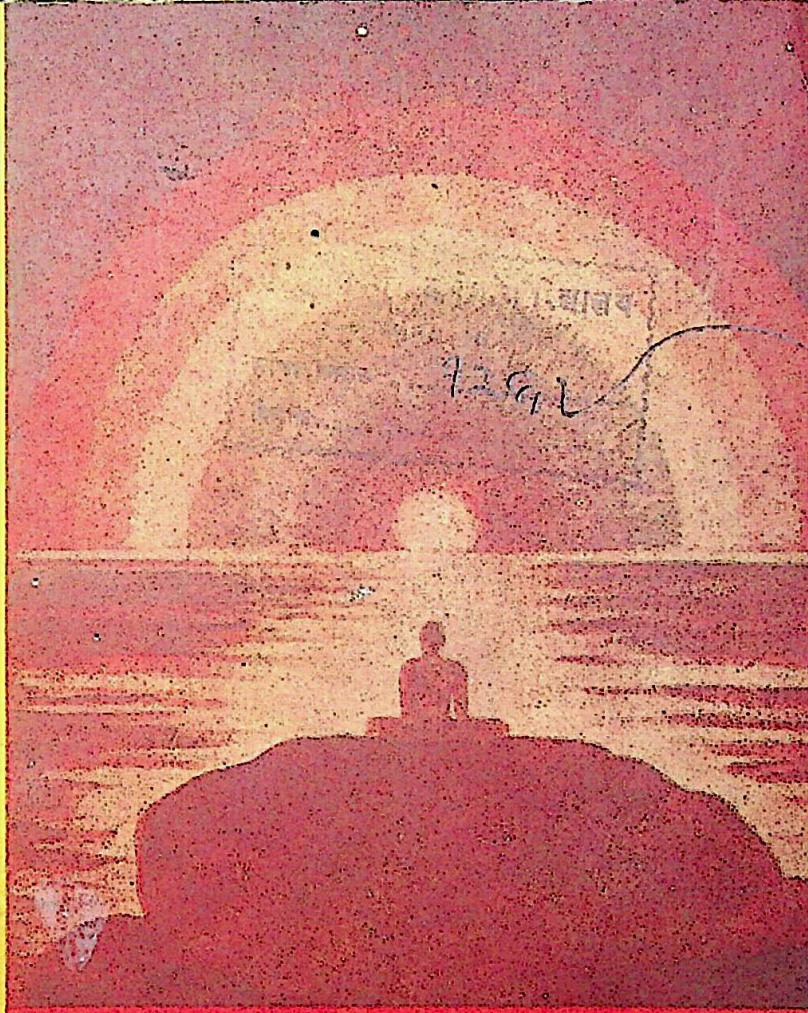


जीवन साधना

बालकोबा भावे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदान्त पुस्तकालय
वा. रा. ग. सं.
आगत क्रमांक 3034
दिनांक

SATYA NARAYAN AGARWAL
KASHI MUMUX BHAWAN
ASSI, VARANASI-5

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन-साधना

(पतञ्जलिकृत योगसूत्रों का सारग्राही सरल विवेचन)

2032

विवेचनकर्ता

बालकोबा भावे

सर्व-सेवा प्रकाशन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक : मन्त्री, सर्व सेवा प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण : तीसरा
प्रतियाँ : २,०००; अक्तूबर, १९७६
मुद्रक : रमाशंकर राय,
राय प्रिंटिंग वर्क्स,
सी० के० ६१/७९ छोटी पियरी
वाराणसी—२२१००१
मूल्य : चार रुपया

Title : JEEVAN-SADHANA
Commentator : Balkoba Bhave
Subject : Yoga Philosophy
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Prakashan,
Rajghat, Varanasi
Edition : Third
Copies : 2,000; October, 1976
Price : Rs. 4.00

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन, वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 3024
दिनांक

प्रकाशकीय

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्रों के रूप में भारतीय विचारधारा को जो स्वरूप प्रदान किया है, उसे अपने-आप में अद्वितीय माना जा सकता है। मानव-जीवन का सारा खेल चित्तवृत्तियों का है। उनका निरोध ही जीवन की सच्ची साधना है। चित्त की वृत्तियाँ ही मनुष्य को ऊपर उठाती हैं और गलत दिशा में बहने पर उसे पतन के गर्त में भी गिराती हैं। योगसूत्रों में विस्तार से बताया गया है कि चित्त की वृत्तियाँ क्या हैं और किस प्रकार उनका निरोध किया जा सकता है ?

गीता में साधना के लिए जिन दो अनिवार्य साधनों का प्रतिपादन किया गया है, वे हैं—अभ्यास और वैराग्य। महर्षि पतञ्जलि भी अभ्यास और वैराग्य पर सबसे ज्यादा जोर देते हैं और उनकी दृढ़ता के लिए साधनपाद में उपयुक्त साधनों का भी विस्तार से विवेचन करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार से चलते-चलते वे धारणा, ध्यान और समाधि का विधिवत् विवेचन करते हैं। यह समाधि विभिन्न सिद्धियों की उपलब्धि में भी सहायक हो सकती है, ऐसा बताते हुए भी महर्षि पतञ्जलि ने सिद्धियों का तिरस्कार किया है। उनका कहना है कि सिद्धियाँ समाधि में विघ्न डालती हैं और सिद्धियों के मोह में पड़ने पर साधना का विकास रुक जाता है।

भारतीय योगशास्त्र भारत के लिए तो अमूल्य निधि है ही, विदेशों में भी उसकी बड़ी ख्याति है। परन्तु विदेशों में 'योग' से प्रायः दो ही अर्थ लिये जाते हैं। एक तो शरीर को नाना प्रकार से मोड़कर तरह-तरह के आसन करना और दूसरा, यौगिक सिद्धियों के कुछ चमत्कार। अधिकांश विदेशी केवल इन्हीं दो दृष्टियों से योग की ओर आकृष्ट होते हैं। परन्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसे भारतीय मानस-शास्त्र की दुर्गति ही माना जा सकता है। कहाँ तो चित्त की वृत्तियों को रोकना, उन पर नियंत्रण पाना और द्रष्टा के साथ एकरूपता की अवस्थिति का उज्ज्वल आदर्श और कहाँ आसनों और सिद्धियों का विकृत स्वरूप !

श्री विनोबा के अनुज श्री बालकोबा भावे ने प्राथमिक साधकों की दृष्टि से अपने अनुभव के आधार पर योगसूत्र के १९५ सूत्रों में से ४३ सूत्र छोड़ दिये हैं और बाकी १५२ सूत्रों पर अपना अनुभवयुक्त सरल विवरण प्रस्तुत किया है। छोड़े हुए सूत्रों में कुछ सिद्धियों का वर्णन है। वे बहुत सारे सूत्र यह कहकर छोड़ दिये गये हैं कि 'पारमार्थिक साधना की दृष्टि से वे आवश्यक नहीं, बल्कि कुछ अंशों में बाधक भी हो सकते हैं।" योग-सूत्रकार महर्षि पतञ्जलि ने स्वयं कहा है कि समाधि में यह सब बातें उपसर्ग यानी उपद्रव सिद्ध होती हैं—'ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः' (पाद ३, सूत्र ३७, पृष्ठ ११९)। असमाधि की अवस्था में जिसे 'व्युत्थान' नाम दिया है ये बातें होती हैं, तो समाधि में कष्ट देती हैं। इसलिए बालकोबा ने हिम्मत के साथ, परन्तु नम्रतापूर्वक उन ४३ सूत्रों को छोड़कर शेष सूत्रों की व्याख्या की है। हम मानते हैं कि इस व्याख्या से साधक योगमार्ग पर सरलता से आरूढ़ हो सकेंगे और योग के मूलतत्त्व को समझकर चित्त-वृत्ति-निरोध के उसके वास्तविक लक्ष्य की ओर बढ़ने में समर्थ हो सकेंगे।

इस तीसरे संस्करण में दूसरे संस्करण की अशुद्धियां सुधार ली गयी हैं और पृष्ठ १११ के ३रे पाद के ९ वें सूत्र की हिन्दी व्याख्या में एक और नयी युक्ति जोड़कर कुल ५ युक्तियों का प्रतिपादन किया गया है।

आशा है, यह संस्करण पाठकों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

—कृष्णराज मेहता

—:०:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो शब्द

योगसूत्रों के रचयिता महामुनि पतञ्जलि का जन्म लगभग दो हजार वर्ष पहले हुआ था। वे समाधि के एक अनुभवी पुरुष थे और मालूम होता है, अपने अनुभवों के आधार पर ही उन्होंने इन सूत्रों की रचना की है।

ध्यानजन्य समाधि की शास्त्रीय प्रक्रिया का प्रतिपादन इस योगशास्त्र की विशेषता मानी जा सकती है। लगभग सभी व्याख्याकारों का मत है कि इस शास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भी यही है। परन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता। मेरी दृष्टि से इस शास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'योग' है और योग-प्राप्ति के जो अनेक साधन इसमें बताये गये हैं, उसमें ध्यानजन्य समाधि भी एक है। यह सही है कि ध्यानजन्य समाधि की शास्त्रीय प्रक्रिया अन्यत्र नहीं मिलती, वह इसी शास्त्र में है, इसलिए यह इस शास्त्र की विशेषता जरूर है।

यह सर्वमान्य है कि गीता सबकी समझ में आनेवाला ग्रन्थ है, लेकिन योगशास्त्र के बारे में यह बात नहीं है। इसलिए योगशास्त्र की व्याख्या, अनुवाद और विवेचन करनेवालों पर यह जिम्मेदारी है कि वे उसे सुगम और सुबोध बनाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तुत करें; भाषा ललित हो, विवेचन सरल हो। प्रस्तुत विवेचन में इस बात का ध्यान रखने की भरपूर कोशिश की गयी है।

प्राचीन काल से यह धारणा चली आयी है कि योग-शास्त्र या ब्रह्मसूत्र साधकों और मुमुक्षुओं के लिए ही है। मुझे लगता है, यह ग्रन्थ उन सबके लिए उपयोगी है, जो सन्मार्ग से चलने के अभिलाषी और प्रयत्नशील हैं। प्रस्तुत पुस्तक के पाठक अनुभव करेंगे कि प्रत्येक सूत्र का अर्थ और विवेचन यहाँ इसी दृष्टि से किया गया है कि सन्मार्ग-प्रवण व्यक्ति के नित्य जीवन में काम आ सके। पुस्तक का 'जीवन-साधना' नाम भी इसी दृष्टि से रखा गया है।

ब्रह्म-विद्या-मन्दिर,
पवनार (वर्धा)

—बालकोबा भावे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
योगसूत्र : मूलपाठ क्रमांक ..... ३ से ११
दिनांक .....

अनुक्रम

१. समाधिपाद

प्रकरण	विषय	सूत्र	पृष्ठ
१.	योग	१ से ४	१५
२.	वृत्तियों का स्पष्टीकरण	५ से ११	१८
३.	अभ्यास-वैराग्य	१२ से १६	२२
४.	सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-भूमिका (१)	१७ से १८	२९
५.	सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-भूमिका (२)	१९ से २१	३३
६.	ईश्वर-प्रणिधान	२३ से २९	३५
७.	अन्तराय और उन्हें जीतने का उपाय	३० से ४०	४०
८.	समापत्ति और सबीज-समाधि	४१ से ४६	५०
९.	निर्बीज-समाधि	४७ से ५१	५६

२. साधनपाद

१.	क्रियायोग	१ से २	६३
२.	पंचक्लेश और उनकी निवृत्ति	३ से ११	६४
३.	दुःखमय संसार और दुःख-त्याग	१२ से १७	७१
४.	दृश्य और द्रष्टा का सम्बन्ध	१८ से २७	७५
५.	अष्टाङ्ग-योग और यम-नियम-विवेचन	२८ से ३४	८२
६.	यम-नियमों का फल	३५ से ४५	८९
७.	आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का विचार	४६ से ५५	९६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३. विभूतिपाद

(इस पाद के कुल ५५ सूत्रों में से साधकोपयोगी केवल १८ सूत्र ही लिये गये हैं ।)

प्रकरण	विषय	सूत्र	पृष्ठ
१.	धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या	१ से ३	१०७
२.	संयम-विचार	४ से ८	१११
३.	निरोध, समाधि और एकाग्रता के परिणाम	९ से १२	११३
४.	सिद्धियों का मिथ्यात्व	१३ से १४	११८
५.	आत्म-ख्याति और विवेक-ख्याति	१५ से १६	१२०
६.	कैवल्य की व्याख्या	१७ से १८	१२२

४. कैवल्यपाद

(इस पाद के प्रारम्भ के छह सूत्र छोड़ दिये गये हैं)

१.	योगी के कर्म और वासना का विचार	१ से ५	१२७
२.	शून्यवाद और विज्ञानवाद का खण्डन	६ से ११	१३१
३.	चित्त बनाम आत्मा	१२ से १८	१३७
४.	विवेक-ख्याति और उसका फल	१९ से २२	१४४
५.	धर्ममेघ-समाधि और उसका फल	२३ से २५	१४८
६.	गुणों का विलय और कैवल्य	२६ से २८	१५१
परिशिष्ट :			
१.	द्वादश भूमिकाएँ		१५६
२.	विवेचित योग-सूत्रों की तालिका		१५७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवन-साधना

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक.....
दिनांक .....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पतञ्जलि-विरचित

योगसूत्र

१. समाधिपादः

१. अथ योगानुशासनम् ।
२. योगः चित्तवृत्तिनिरोधः ।
३. तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम् ।
४. वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र ।
५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः च ।
६. प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ।
७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।
८. विपर्ययः मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम् ।
९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः विकल्पः ।
१०. अभाव-प्रत्ययालम्बना वृत्तिः निद्रा ।
११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।
१२. अभ्यास-वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः ।
१३. तत्र स्थितौ यत्नः अभ्यासः ।
१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।
१५. दृष्टानुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम् ।
१६. तत् परं पुरुषख्यातेः गुणवैतृष्ण्यम् ।
१७. वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः ।
१८. विराम-प्रत्ययाभ्यास-पूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ।
१९. भवप्रत्ययः विदेह-प्रकृति-लयानाम् ।
२०. श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा-पूर्वकः इतरेषाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१. तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः ।
२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ।
२३. ईश्वरप्रणिधानाद् वा ।
२४. क्लेश-कर्म-विपाकाशयैः अपरामृष्टः पुरुष-विशेषः ईश्वरः ।
२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।
२६. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात् ।
२७. तस्य वाचकः प्रणवः ।
२८. तज्जपः तदर्थभावनम् ।
२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायाभावः च ।
३०. व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमादालस्याविरति-भ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपाः, ते अन्तरायाः ।
३१. दुःख-दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासाः विक्षेप-सहभुवः ।
३२. तत्प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्वाभ्यासः ।
३३. मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणाम् सुख-दुःख-पुण्यापुण्य-विषयाणाम् भावनातः चित्तप्रसादनम् ।
३४. प्रच्छर्दन-विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य ।
३५. विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ।
३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ।
३७. वीतरागविषयम् वा चित्तम् ।
३८. स्वप्न-निद्रा-ज्ञानालम्बनम् वा ।
३९. यथाभिमतध्यानाद् वा ।
४०. परमाणु-परम-महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।
४१. क्षीणवृत्तेः अभिजातस्येव मणेः ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थ-तदञ्जनता-समापत्तिः ।
४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।
४३. स्मृति-परिशुद्धौ स्वरूपशून्या इव अर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४४. एतया एव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।
४५. सूक्ष्म-विषयत्वं च अलिङ्गपर्यवसानम् ।
४६. ता एव सबीजः समाधिः ।
४७. निर्विचार-वैशारद्ये अध्यात्म-प्रसादः ।
४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।
४९. श्रुतानुमान-प्रज्ञाभ्याम् अन्यविषया विशेषार्थत्वात् ।
५०. तज्जः संस्कारः अन्यसंस्कार-प्रतिबन्धी ।
५१. तस्यापि निरोधे सर्व-निरोधात् निर्बीजः समाधिः ।

२. साधनपादः

१. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।
२. समाधि-भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ।
३. अविद्याऽस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।
४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम् प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।
५. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या ।
६. दृग्दर्शनशक्त्योः एकात्मतेव अस्मिता ।
७. सुखानुशयी रागः ।
८. दुःखानुशयी द्वेषः ।
९. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।
१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।
११. ध्यानहेयाः तद्वृत्तयः ।
१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।
१४. ते ह्लाद-परिताप-फलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।
१५. परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैः गुण-वृत्ति-विरोधात् च दुःख-मेव सर्वं विवेकिनः ।
१६. हेयम् दुःखम् अनागतम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१७. द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।
१८. प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलम् भूतेन्द्रियात्मकम् भोगापवर्गार्थम् दृश्यम् ।
१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ।
२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।
२१. तदर्थ एव दृश्यस्य आत्मा ।
२२. कृतार्थं प्रति नष्टमपि अनष्टम् तदन्यसाधारणत्वात् ।
२३. स्व-स्वामि-शक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।
२४. तस्य हेतुः अविद्या ।
२५. तदभावात् सयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।
२६. विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः ।
२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।
२८. योगाङ्गानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः ।
२९. यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः अष्टौ अङ्गानि ।
३०. अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ।
३१. जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ।
३२. शौच-सन्तोष-तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।
३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।
३४. वितर्काः हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिताः लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वकाः मृदु-मध्याधिमात्राः दुःखाज्ञानानन्तफलाः इति प्रतिपक्ष-भावनम् ।
३५. अहिंसा-प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर-त्यागः ।
३६. सत्य-प्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् ।
३७. अस्तेय-प्रतिष्ठायाम् सर्वरत्नोपस्थानम् ।
३८. ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायाम् वीर्यलाभः ।
३९. अपरिग्रह-स्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४०. शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैः असंसर्गः ।
४१. सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्र्य इन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।
४२. सन्तोषात् अनुत्तमः सुखलाभः ।
४३. कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धि-क्षयात् तपसः ।
४४. स्वाध्यायात् इष्ट-देवता-सम्प्रयोगः ।
४५. समाधि-सिद्धिः ईश्वरप्रणिधानात् ।
४६. स्थिरसुखम् आसनम् ।
४७. प्रयत्न-शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।
४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ।
४९. तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गति-विच्छेदः प्राणायामः ।
५०. बाह्याभ्यन्तर-स्तम्भ-वृत्तिः देश-काल-संख्याभिः परिदृष्टः दीर्घ-सूक्ष्मः ।
५१. बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी चतुर्थः ।
५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।
५३. धारणासु च योग्यता मनसः ।
५४. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः ।
५५. ततः परमा वश्यता इन्द्रियाणाम् ।

३. विभूतिपादः

१. देशबन्धः चित्तस्य धारणा ।
२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।
३. तदेव अर्थमात्र-निर्भासम् स्वरूपशून्यम् इव समाधिः ।
४. त्रयम् एकत्र संयमः ।
५. तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।
६. तस्य भूमिषु विनियोगः ।
७. त्रयम् अन्तरङ्गम् पूर्वेभ्यः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

८. तद् अपि बहिरङ्गम् निर्बीजस्य ।
९. व्युत्थान-निरोध-संस्कारयोः अभिभव-प्रादुर्भावौ निरोध-क्षण-चित्तान्वयः निरोधपरिणामः ।
१०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।
११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।
१२. शान्तोदितौ तुल्य-प्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रता-परिणामः ।
१३. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामाः व्याख्याताः ।
१४. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ।
१५. क्रमान्यत्वम् परिणामान्यत्वे हेतुः ।
१६. परिणामत्रयसंयमात् अतीतानागतज्ञानम् ।
१७. शब्दार्थप्रत्ययानाम् इतरेतराध्यासात् सङ्करः तत्प्रविभाग-संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ।
१८. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।
१९. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।
२०. न च तत् सालम्बनम् तस्य अविषयीभूतत्वात् ।
२१. काय-रूप-संयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशा-सम्प्रयोगे अन्तर्धानम् ।
२२. सोपक्रमम् निरुपक्रमम् च कर्म तत्संयमात् अपरान्तज्ञानम् अरिष्टेभ्यो वा ।
२३. मैत्र्यादिषु बलानि ।
२४. बलेषु हस्तिबलादीनि ।
२५. प्रवृत्त्याऽलोकन्यासात् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्ट-ज्ञानम् ।
२६. भुवनज्ञानम् सूर्ये संयमात् ।
२७. चन्द्रे ताराव्यूह-ज्ञानम् ।
२८. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ।
२९. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।
३०. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१. कूर्मनाड्याम् स्थैर्यम् ।
३२. मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।
३३. प्रातिभाद् वा सर्वम् ।
३४. हृदये चित्तसंवित् ।
३५. सत्त्व-पुरुषयोः अत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ।
३६. ततः प्रातिभ-श्रावण-वेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।
३७. ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः ।
३८. बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनात् च चित्तस्य परशरीरावेशः ।
३९. उदानजयात् जल-पङ्क-कण्टकादिषु असङ्गः उत्क्रान्तिः च ।
४०. समानजयात् ज्वलनम् ।
४१. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमात् दिव्यम् श्रोत्रम् ।
४२. कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमात् लघुतूलसमापत्तेः च आकाशगमनम् ।
४३. बहिः अकल्पिता वृत्तिः महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।
४४. स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व-संयमात् भूतजयः ।
४५. ततः अणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानिभिघातः च ।
४६. रूप-लावण्य-बल-वज्र-संहननत्वानि कायसम्पत् ।
४७. ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व-संयमात् इन्द्रियजयः ।
४८. ततो मनोजवित्वम् विकरणभावः प्रधानजयः च ।
४९. सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वम् सर्वज्ञातृत्वम् च ।
५०. तद्वैराग्यात् अपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।
५१. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणम् पुनः अनिष्टप्रसङ्गात् ।
५२. क्षण-तत्क्रमयोः संयमात् विवेकजम् ज्ञानम् ।
५३. जाति-लक्षण-देशैः अन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोः ततः प्रतिपत्तिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५४. तारकम् सर्वविषयम् सर्वथाविषयम् अक्रमम् चेति विवेकजम् ज्ञानम् ।
५५. सत्त्व-पुरुषयोः शुद्धि-साम्ये कैवल्यम् इति ।

४. कैवल्यपादः

१. जन्मौषधि-मन्त्र-तपः-समाधिजाः सिद्धयः ।
२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।
३. निमित्तम् अप्रयोजकम् प्रकृतीनाम् वरणभेदः तु ततः क्षेत्रिकवत् ।
४. निर्माणचित्तानि अस्मितामात्रात् ।
५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकम् चित्तम् एकम् अनेकेषाम् ।
६. तत्र ध्यानजम् अनाशयम् ।
७. कर्माशुक्लाकृष्णम् योगिनः त्रिविधम् इतरेषाम् ।
८. ततः तद्विपाकानुगुणानाम् एव अभिव्यक्तिः वासनानाम् ।
९. जाति-देश-काल-व्यवहितानाम् अपि आनन्तर्यम् स्मृति-संस्कारयोः एकरूपत्वात् ।
१०. तासाम् अनादित्वम् च आशिषः नित्यत्वात् ।
११. हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वात् एषाम् अभावे तदभावः ।
१२. अतीतानागतम् स्वरूपतः अस्ति अध्वभेदात्-धर्माणाम् ।
१३. ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मानः ।
१४. परिणामैकत्वात् वस्तुतत्त्वम् ।
१५. वस्तु-साम्ये चित्तभेदात् तयोः विभक्तः पन्थाः ।
१६. न च एक-चित्त-तन्त्रम् वस्तु तद् अप्रमाणकम् तदा किम् स्यात् ।
१७. तद् उपरागापेक्षित्वात् चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।
१८. सदा ज्ञाताः चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात् ।
१९. न तत् स्वाभासम् दृश्यत्वात् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२०. एकसमये च उभयानवधारणम् ।
२१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेः अतिप्रसङ्गः स्मृति-सङ्करश्च ।
२२. चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारापत्तौ स्व-बुद्धि-संवेदनम् ।
२३. द्रष्टृ-दृश्योपरक्तम् चित्तम् सर्वार्थम् ।
२४. तद् असंख्येय-वासनाभिः चित्रम् अपि परार्थम् संहत्य-कारित्वात् ।
२५. विशेषदर्शिनः आत्मभावभावना-विनिवृत्तिः ।
२६. तदा विवेकनिम्नम् कैवल्य-प्राग्भारम् चित्तम् ।
२७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।
२८. हानम् एषाम् क्लेशवत् उक्तम् ।
२९. प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः धर्ममेघः समाधिः ।
३०. ततः क्लेशकर्म-निवृत्तिः ।
३१. तदा सर्वावरण-मलापेतस्य ज्ञानस्य आनन्त्यात् ज्ञेयम् अल्पम् ।
३२. ततः कृतार्थानाम् परिणाम-क्रम-समाप्तिः गुणानाम् ।
३३. क्षण-प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।
३४. पुरुषार्थशून्यानाम् गुणानाम् प्रतिप्रसवः कैवल्यम् स्वरूप-प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः इति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम

समाधिपाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१. योग

२. वृत्तियों का स्पष्टीकरण

३. अभ्यास-वैराग्य

४. सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-भूमिका (१)

५. सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-भूमिका (२)

६. ईश्वर-प्रणिधान

७. अन्तराय और उन्हें जीतने का उपाय

८. समापत्ति और सबीज-समाधि

९. निर्बीज समाधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योग : १ :

१. अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अथ : अब

योग-अनुशासनम् : योग का उपदेश दिया जाता है, स्पष्टीकरण या व्याख्यान किया जाता है।

× × ×

२. योगः चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

चित्त-वृत्ति-निरोधः : चित्त की वृत्तियों का निरोध, रोकना

योगः : योग है।

वृत्ति-निरोध के दो प्रकार हैं। एक यह कि एक स्थान पर आसनस्थ होकर, आंखें बन्द करके वृत्तियों को रोकना, जिसका विवरण आगे 'साधनपाद' में किया गया है; और दूसरा यह कि जाग्रत काल में सारा काम करते हुए वृत्तियों को रोकना। इस सूत्र में दूसरे प्रकार के निरोध का वर्णन है। साधनपाद में बताये गये वृत्ति-निरोध का नाम 'ध्यान' है और इस सूत्र में वर्णित वृत्ति-निरोध का नाम 'योग' है। ध्यान इस योग का उपाय है, साधन है।

इस अखण्ड निरोध में वृत्तियों का सम्पूर्ण नियंत्रण सध जाता है। द्रष्टा जीवात्मा चाहे जब, चाहे जितनी देर तक, चाहे जिस वृत्ति का निरोध कर सकता है, रोक सकता है। साथ ही साथ चाहे जिस अच्छी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावना को, चाहे जितनी देर तक स्थिर रख सकता है। इस योगात्मक वृत्ति-निरोध में असद्विचार कभी नहीं उठते, उनका स्पर्श भी नहीं होता। सद्विचार और सद्भावना पर पूरा अधिकार रहता है।

(इस योगावस्था में द्रष्टा जीवात्मा की स्थिति क्या रहती है, वह कहाँ रहता है—यह अगले सूत्र में बताया है।)

× × ×

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम् ॥ ३ ॥

तदा	: तब
द्रष्टुः	: द्रष्टा जीवात्मा की
स्वरूपे	: अपने स्वरूप में
अवस्थानम्	: अवस्थिति (रहना) होती है।

वृत्तियों पर द्रष्टा जीवात्मा का अधिकार सध जाने पर द्रष्टा जीवात्मा स्व-रूप का अनुभव करने लगता है। वह स्व-रूप 'साक्षी' का है। साक्षी से द्रष्टा भिन्न नहीं है। भिन्न न होते हुए भी द्रष्टा जीवात्मा की साक्षित्व में यानी अपने स्वरूप में अवस्थिति नहीं रहती है। वृत्तियों पर पूरा नियंत्रण सध जाने के बाद उसे अपने साक्षित्व का, ज्ञातापन का अनुभव होता है। विश्व और देह की आसक्ति छूटने के बाद चित्त निर्मल होता है। उसके बाद ही वृत्ति काबू में आ सकती है। स्वरूपानुभव में 'मैं देह हूं' की भ्रमजन्य कल्पना मिट ही जानी चाहिए। यदि स्वरूप का अनुभव करते हुए भी 'मैं देह हूँ' ऐसी कल्पना रह जाती है, तो यही समझना चाहिए कि स्वरूप का अनुभव अभी नहीं हुआ है। जहाँ अखण्ड वृत्ति-निरोध है, वहाँ स्वरूप-स्थिति का अखण्ड अनुभव भी है, और जहाँ स्वरूप-स्थिति का अखण्ड अनुभव है, वहाँ 'मैं देह हूँ' यह मूर्छा रह ही नहीं सकती।

(स्वरूप-स्थिति के अनुभव से पहले या अनुभव लेने के बाद व्युत्थान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल में द्रष्टा जीवात्मा की क्या स्थिति रहती है, यह अगले सूत्र में बताया है।)

× × ×

४. वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र ॥ ४ ॥

इतरत्र : स्वरूप-स्थिति के अनुभव के अभाव में या (स्वरूप-स्थिति का अनुभव करने के बाद) व्युत्थान-काल में

वृत्ति-सारूप्यम् : (द्रष्टा जीवात्मा की) वृत्तियों के साथ एकरूपता रहती है।

जिन्होंने स्वरूप-स्थिति का अनुभव लिया नहीं है, उनके लिए व्युत्थान-काल है ही नहीं। ऐसे अज्ञ जीव हमेशा वृत्तियों के साथ ही चिपके रहते हैं। एक विचार आता है, जाता है। दूसरा विचार आता है, वह भी जाता है। इस प्रकार अच्छे-बुरे विचारों के अखण्ड प्रवाह में द्रष्टा जीवात्मा डूबा रहता है। लेकिन जिन ज्ञानियों ने स्वरूप-स्थिति अनुभव की है, उनको यद्यपि किसीके साथ काम करते समय, किसीको कुछ समझाते समय, पढ़ते-लिखते समय या समाज की कोई सेवा करते समय वृत्तियों के साथ एकरूप होना ही पड़ता है, परन्तु वह एकरूपता उतनी ही देर तक रहती है, जब तक काम करना है; काम समाप्त होते ही वे अपनी स्वरूप-स्थिति में आ जाते हैं। चूंकि उन्हें स्वरूपानुभव हो गया है, इसलिए उनमें लेशमात्र भी कर्तृत्व का भान या देहाभिमान रहता नहीं है। अखण्ड शांति के अनुभव के साथ उनकी सात्त्विक क्रियाएँ चलती रहती हैं। स्वरूप के अनुभव से प्राप्त हुई अखंड जाग्रति, सावधानता और निर्विकारता उनके हरएक व्यवहार में हमेशा प्रकट दिखाई देगी।

ये तीनों सिद्धान्त-सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः च ॥ ५ ॥

वृत्तयः	: वृत्तियाँ
पञ्चतय्यः	: पाँच प्रकार की हैं, (जो)
क्लिष्टाः च	: दुःख देनेवाली और
अक्लिष्टाः	: दुःख न देनेवाली हैं।

× × ×

६. प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ॥ ६ ॥

प्रमाण	: सत्य, यथार्थ निश्चय
विपर्यय	: असत्य, भ्रमयुक्त निश्चय
विकल्प	: आरोपित कल्पना--विशेषयुक्त निश्चय
निद्रा	: अभावात्मक निश्चय
स्मृतयः	: स्मरण, पहले अनुभूत विषय का पुनः जाग्रत होना (इन विभिन्न प्रकार के निश्चयों या ज्ञानों को 'वृत्ति' कहते हैं)।

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मक सृष्टि का ज्ञान पाँच प्रकार का होता है। सामने पड़ी डोरी को देखकर यदि यह निश्चय हो जाता है कि 'यह डोरी है', तो उस निश्चय को 'प्रमाण-वृत्ति' कहते हैं। लेकिन डोरी को देखकर यह ज्ञान हो कि 'यह सर्प है', तो वह भ्रमयुक्त ज्ञान है। उसे 'विपर्यय-वृत्ति' कहते हैं। एक तिरंगा कपड़ा फहरा रहा है। हम जानते हैं कि वह मात्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिरंगा कपड़ा है, फिर भी उसे 'हिन्दुस्तान का झण्डा' कहते हैं। यानी हमने उस तिरंगे कपड़े पर एक विशेष कल्पना का आरोप किया है। इस प्रकार के निश्चय को 'विकल्प-वृत्ति' कहते हैं। ये तीनों प्रकार के निश्चय भावात्मक हैं। इनके अतिरिक्त एक और अनुभव आता है कि सामने सृष्टि के होते हुए भी उसके बारे में उक्त तीन प्रकार का भावात्मक ज्ञान होने के बजाय 'कुछ नहीं है' ऐसा अभावात्मक, शून्यात्मक निश्चय होता है। इस प्रकार के निश्चय को 'निद्रा-वृत्ति' कहते हैं। निद्रा में ज्ञान अवश्य है, लेकिन वह अभावात्मक है। ये चार प्रकार के भावात्मक और अभावात्मक ज्ञान एक बार हो जाने के बाद कालान्तर में फिर से जाग्रत होते हैं। इस पुनः जाग्रत ज्ञान या संस्कार को 'स्मृति-वृत्ति' कहते हैं। अनुभव के बिना स्मृति असंभव है। पहले निद्रा का अनुभव आता है। बाद में उस निद्रा की स्मृति जाग्रत होती है कि निद्रा कैसी आयी थी। निद्रा में भी जब स्मृति जाग्रत होती है, तब उसको हम 'स्वप्न' कहते हैं। जाग्रत अवस्था में स्मृति जाग्रत होती है, तो उसे स्वप्न नहीं कहते। लेकिन उसको भी 'जाग्रत काल का स्वप्न' ही मानना चाहिए।

(इन पाँचों वृत्तियों का स्पष्टीकरण अगले पाँच सूत्रों में किया गया है।)

× × ×

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

प्रत्यक्ष	: प्रत्यक्ष
अनुमान	: अनुमान (लक्षण संबंधी)
आगमाः	: आगम (ये तीन)
प्रमाणानि	: प्रमाण हैं।

अग्नि को देखते हैं और उसका ज्ञान होता है, यह 'प्रत्यक्ष-प्रमाण' है। धुँआ देखते हैं, तो अंदाज लगाते हैं कि वहाँ अग्नि होनी चाहिए, यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अनुमान-प्रमाण' है। ऋषि-मुनियों ने 'ब्रह्म' का प्रत्यक्ष अनुभव लिया और उसका वर्णन किया। हम उनके वचनों को श्रद्धापूर्वक मान लेते हैं, यह 'आगम-प्रमाण' है। तीनों में सत्य निश्चय या ज्ञान है।

× × ×

८. विपर्ययः मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

मिथ्याज्ञानम्	: भ्रमयुक्त ज्ञान
विपर्ययः	: विपर्यय (कहलाता) है,
अतद्रूप-प्रतिष्ठम्	: जिस ज्ञान की कोई आधारभूत वस्तु नहीं है।

डोरी को देखने से सर्प का जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अतद्रूप-प्रतिष्ठ है यानी आधारभूत सर्प के अभाव में 'सर्प' का ज्ञान हुआ। जहाँ सर्प का आधार हो और सर्प का ज्ञान हो, वहाँ वह यथार्थज्ञान है, मिथ्याज्ञान नहीं। यथार्थज्ञान तद्रूपप्रतिष्ठ रहता है यानी जिस पदार्थ का ज्ञान होता है, उसके लिए उसी पदार्थ की प्रतिष्ठा यानी आधार रहता है। मिथ्याज्ञान में अतद्रूपप्रतिष्ठा रहती है। जो वस्तु सामने है, उसका ज्ञान नहीं होता, लेकिन अन्य पदार्थ का ज्ञान होता है। मिथ्याज्ञान या भ्रमयुक्त निश्चय का कारण अज्ञान है।

× × ×

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः विकल्पः ॥ ९ ॥

विकल्पः	: विकल्प (वह है, जो)
शब्द-ज्ञान-अनुपाती	: शब्द-ज्ञान के बाद उठता है, (और जो)
वस्तु-शून्यः	: वस्तुशून्य है, यानी जहाँ वस्तु का अभाव है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकल्प का अर्थ है, विशेष कल्पना या विशिष्ट भाव। एक विशेष आकृति का पत्थर देखते हैं या बनाते हैं और उसमें 'महादेव' की विशेष कल्पना करते हैं। उस पत्थर में महादेव की यह विशेष कल्पना 'महादेव' शब्दज्ञान के बाद ही उठती है। लेकिन यह आरोपित विशेष कल्पना वस्तु-शून्य है यानी उस पत्थर में महादेव नामक कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है।

विपर्यय में वास्तविक वस्तु का ज्ञान ही नहीं होता, विकल्प में वास्तविक वस्तु का ज्ञान होता है और उसके साथ, उस पर एक नयी कल्पना या विशेष भाव आरोपित करते हैं।

× × ×

१०. अभाव-प्रत्ययालम्बना वृत्तिः निद्रा ॥ १० ॥

अभाव-प्रत्यय-आलम्बना	: अभाव-प्रत्यय का यानी अभावात्मक ज्ञान का आश्रय लेनेवाली
वृत्तिः	: वृत्ति
निद्रा	: निद्रा है।

जाग्रतिकाल में शून्यचित्त का अनुभव आता ही है। उसकी गहराई बढ़ती है, तो उसका नाम 'निद्रा' है। निद्रा में जीवात्मा को सृष्टि के अभाव का प्रत्यय होता है, अभाव प्रतीत होता है। निद्रा के बाद जाग्रत होने पर द्रष्टा जीवात्मा अपनी निद्रावस्था के अनुभव का वर्णन करता है कि उस अवस्था में 'कुछ नहीं था'। 'कुछ नहीं' इस अभाव-प्रत्यय का अनुभव जीवात्मा कर रहा था। जीवात्मा कभी सोता नहीं है, अखण्ड जाग्रत रहता है। लेकिन वह जीवात्मा अज्ञान के कारण चित्त से एक-रूप हो जाता है। सबसे यही गलती होती है। और इसी कारण बन्धन है।

निद्रा में अभाव-प्रत्यय है, समाधि में प्रत्ययों का अभाव है, ध्यान में आत्म-प्रत्यय की धारा बहती है। निद्रा तमोगुण का कार्य है, ध्यान सत्त्वगुण का कार्य है और समाधि सत्त्वगुण की पराकाष्ठा है।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

अनुभूत-विषय-असम्प्रमोषः : जिस विषय का अनुभव पहले लिया है, उसका नष्ट न होना और उसी रूप में फिर जाग्रत होना

स्मृतिः : स्मृति है।

स्मृति के आधार पर ही सारा व्यवहार चलता है। आत्मस्मृति के अभाव में दुःख का अनुभव आता है। आत्मस्मृति प्राप्त करना इस योग-शास्त्र का विषय है। चार प्रकार की वृत्तियों का जो अनुभव आता है, वही फिर से उसी रूप में जाग्रत होता है, तो उसको 'स्मृति' कहते हैं। यह पाँचवीं वृत्ति है।

अभ्यास-वैराग्य : ३ :

१२. अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

अभ्यास-वैराग्याभ्याम् : अभ्यास और वैराग्य से

तत्-निरोधः : उन पाँच वृत्तियों का निरोध होता है।

'निरोध' का अर्थ है, वृत्तियों को अत्यन्त निर्मल करना और निर्मल वृत्तियों पर विजय पाना। इस समाधिपाद में 'पूर्णयोग' बताया गया है। पूर्णयोग का अर्थ है—चलते-फिरते, खाते-पीते, सारा व्यवहार करते हुए वृत्तियों का निरोध करके आत्मानुभव में स्थित रहना, पिण्ड और ब्रह्मांड में व्याप्त एक तत्त्व के अनुसंधान में जीवन व्यतीत करना। पूर्णयोग के साधन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के तौर पर अगले साधनपाद में अष्टांगयोग बतलाया है। उसमें ध्यानजन्य वृत्ति-निरोध का विवेचन है, जो प्रस्तुत वृत्ति-निरोध से भिन्न है।

अब एक-एक वृत्ति के निरोध पर विचार करें।

१. प्रमाण-वृत्ति-निरोध : प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम—ये तीन प्रमाण बताये गये हैं।

(अ) प्रत्यक्ष-प्रमाण-वृत्ति-निरोध : सृष्टि का प्रत्यक्ष ज्ञान पाँच ज्ञानेन्द्रियों से होता है। सृष्टि में सत्, असत् ये दो भेद हैं। यदि हमारा ध्येय वृत्तियों को निर्मल रखना है, तो यह निश्चय होना चाहिए कि आँख से पवित्र वस्तु ही देखेंगे, अपवित्र नहीं; कान से पवित्र शब्द ही सुनेंगे, अपवित्र नहीं; आदि। इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा अपवित्रता को छोड़कर पवित्रता का ही ग्रहण करें, यह 'प्रत्यक्ष-प्रमाण-वृत्ति-निरोध' है।

(आ) अनुमान-वृत्ति-निरोध : हम प्रायः सृष्टि के तथा सृष्टि के मूल तत्त्वों के बारे में उल्टे-सीधे अनुमान करते रहते हैं। हमारे ये अनुमान दिन-प्रतिदिन सत्य के अनुकूल और सूक्ष्म बनते जायँ, ऐसा प्रयत्न करना 'अनुमान-वृत्ति-निरोध' है।

(इ) आगम वृत्ति-निरोध : शास्त्र और संतों के वचन अनेक प्रकार के होते हैं। हरएक वचन को सत्य की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार सत्य को ग्रहण करना और असत्य को छोड़ना ही 'आगम-वृत्ति-निरोध' है।

२. विपर्यय-वृत्ति-निरोध : भ्रममूलक और मिथ्या कल्पनाएँ हमारे मन में चलती रहती हैं। 'मैं देह हूँ'—यह सबसे बड़ा भ्रम है। इस भ्रम को उखाड़ना तथा बाह्य सृष्टि के विषय में जो एकदम मिथ्या कल्पनाएँ कर लेते हैं, जिनके लिए बाद में पछताना भी पड़ता है, उन्हें छोड़ना 'विपर्यय-वृत्ति-निरोध' है।

३. विकल्प-वृत्ति-निरोध : रास्ते में कोई स्त्री जा रही है। उसे देखते ही मातृभाव पैदा होता है। उसमें माता की कल्पना होना विकल्प

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, यानी विशेष कल्पना है। यह पवित्र कल्पना है। लेकिन स्त्री को देखते ही मन में विकार उत्पन्न हुआ और पत्नी की कल्पना आयी, तो यह भी विकल्प ही है, लेकिन यह अपवित्र है, मिथ्या कल्पना है। मिथ्या इसलिए कि इस कल्पना से उस स्त्री में निहित वास्तविक आत्मतत्त्व को हम कभी पहचान नहीं सकेंगे। इसके विपरीत, मातृभाव की कल्पना से वैराग्य, वैराग्य से ईश्वरभाव—इस प्रकार मूल तत्त्व तक पहुँचाने की सामर्थ्य मातृभाव में है। इसलिए पवित्र कल्पनाओं को ग्रहण करें और अपवित्र विकल्प को छोड़ें—यह 'विकल्प-वृत्ति-निरोध' है।

४. निद्रा-वृत्ति-निरोध : निद्रा का सर्वथा त्याग तो असम्भव ही है। बल्कि किसी भी वृत्ति को पूर्णतया छोड़ना अशक्य है। इसलिए निद्रा-वृत्ति का निरोध करने का अर्थ भी यही है कि उसे शुद्ध किया जाय।

निद्रा को वश में करना यानी आहार को वश में करना। आहार को शुद्ध करना यानी सात्त्विक आहार ही लेना और उसकी मात्रा पर नियंत्रण रखना। जिसने आहार की मात्रा को वश में नहीं किया, उसका वश निद्रा पर नहीं चल सकता; बल्कि निद्रा अधिक आती है। निद्रा पर जिनका वश नहीं, वे आत्मदर्शन या हरि-दर्शन के मार्ग पर बहुत कठिनाई से ही अग्रसर हो सकेंगे।

५. स्मृति-निरोध : रास्ते में जाते-जाते, इच्छा न होते हुए भी कोई अशुभ या अपवित्र दृश्य दिखाई दिया। यद्यपि तुरंत दृष्टि उधर से हटा ली, फिर भी उस मलिन दृश्य की स्मृति बाद में हो सकती है। उसी समय उस मलिन स्मृति को हटा देना चाहिए, निरोध करना चाहिए। दृश्य सामने आने पर उधर से दृष्टि हटा लेने के बजाय उसको फिर-फिर देखने की इच्छा हो और मन में द्वन्द्व चलता रहे, तो इस निर्णय पर पहुँचना कि उधर देखना नहीं है और उधर से फिर दृष्टि हटा लेना 'प्रत्यक्ष-प्रमाण-वृत्ति-निरोध' है, बाद में उठनेवाली उसकी स्मृति को रोकना 'स्मृति-निरोध' है। मलिन वृत्ति का उठना अभ्यास से बिलकुल बंद हो जाने के बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अच्छी यानी पवित्र स्मृति को वश में कर लेने का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि पवित्र स्मृति को भी, जब चाहें तब, तुरंत हटाया जा सके। इसका अर्थ यह कि स्मृति-निरोध द्विविध है—'असत् स्मृति-निरोध' और 'सत् स्मृति-निरोध'।

(इन पाँचों वृत्तियों को अधिकाधिक शुद्ध करते हुए उन पर विजय पाने के लिए सूत्रकार दो उपाय अगले सूत्रों में बता रहे हैं—अभ्यास और वैराग्य।)

× × ×

१३. तत्र स्थितौ यत्नः अभ्यासः ॥ १३ ॥

तत्र	: चित्तनिरोधरूपी योगावस्था में
स्थितौ	: स्थित होने के लिए
यत्नः	: बार-बार यत्न करना
अभ्यासः	: अभ्यास है।

बार-बार यत्न करना ही 'अभ्यास' है। अभ्यास-काल में फलाशा-त्याग की बात ध्यान में रखना नितांत आवश्यक है। शास्त्राध्ययन, संतों के सहवास और चिन्तन-मनन द्वारा ध्येय और ध्येय-प्राप्ति का साधन —मार्ग निश्चित कर लेना चाहिए। यह चिन्ता छोड़ देनी चाहिए कि ध्येय कब प्राप्त होगा। 'इतने समय से वृत्ति-निरोध का अभ्यास कर रहा हूँ, फिर भी मेरी कुछ प्रगति नहीं हो रही है'—इस प्रकार के चिन्तन से निरुत्साह और निराशा पैदा होती है और उसमें ही काफी शक्ति व्यर्थ खर्च हो जाती है। ऐसी व्यर्थ चिन्ता करने से प्रगति थोड़े ही होनेवाली है! निराशा में खर्च होनेवाली शक्ति को भी प्रयत्न की मात्रा बढ़ाने में, खोज करने में लगाना चाहिए।

(यह अभ्यास कब पक्का होगा, यह अगले सूत्र में बताया है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥ १४ ॥

तु	: लेकिन
सः	: वह (अभ्यास)
दीर्घकाल	: दीर्घ समय तक
नैरन्तर्य	: निरन्तर
सत्कार	: सत्कारपूर्वक
आसेवितः	: परिपूर्ण रीति से सेवन करने से (ही)
दृढभूमिः	: दृढ यानी पक्का होता है ।

इसमें चार बातें बतायी गयी हैं—

'दीर्घकाल' का अर्थ है मृत्युपर्यन्त । कइयों को असत् संस्कारों के कारण एक ही जन्म में अभ्यास दृढ़ नहीं होता । अभ्यास पक्का होने के बाद भी अभ्यास-भूमिका को मृत्युपर्यन्त बनाये रखना मैं इष्ट समझता हूँ, ताकि एक बार दृढ़ होने के बाद फिर उसमें शिथिलता न आने पाये ।

'निरन्तर' यानी प्रतिदिन, सतत, अखण्ड । बीच में खण्ड नहीं पड़ना चाहिए ।

'सत्कारपूर्वक' के माने हैं प्रेमपूर्वक, भक्तिपूर्वक, श्रद्धापूर्वक, आदर-भाव से ।

'परिपूर्ण रीति से सेवन' करने का अर्थ है, ईश्वर ने जितनी शक्ति दी है, वह सब अभ्यास में लगाना । ध्येय कब प्राप्त होगा, इस प्रकार की चिन्ता में यदि थोड़ी भी शक्ति खर्च होती है, तो उसका अर्थ यह कि हमने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्ति की चोरी की; वंचना की। बिना चुराये, बिना वंचना किये सारी शक्ति अभ्यास-वैराग्य में लगाना 'परिपूर्ण-सेवन' है।

(अब अगले दो सूत्रों में वैराग्य की व्याख्या बताते हैं।)

× × ×

१५. दृष्टानुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

दृष्ट	: देखे हुए (और)
अनुश्रविक	: सुने हुए
विषय	: विषयों के बारे में
वितृष्णस्य	: तृष्णारहित पुरुष को
वशीकार-संज्ञा	: 'विषय मेरे वश में हैं' ऐसा जो अनुभव आता है, उसका नाम
वैराग्यम्	: वैराग्य है।

यह विषय-वैराग्य है। इसको 'अपर-वैराग्य' भी कहते हैं। इसमें दो बातें बतायी गयी हैं :

१. शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मक जो पाँच विषय हैं, उनके प्रति मन में जो तृष्णा या तीव्र इच्छा रहती है, उसे हटाने का प्रयत्न पहले करना चाहिए। इस प्रयत्न के सफल होने पर ही 'विषय हमारे वश में हैं' ऐसा अनुभव आ सकता है।

२. सृष्टि में विद्यमान पाँच विषयों के तीन विभाग और हैं—सत्त्व, रज और तम। तृष्णात्याग का दूसरा अर्थ है, पहले राजसिक और तामसिक वासनाओं का त्याग। सात्त्विक इच्छा का त्याग पहले नहीं करना है, कर भी नहीं सकते। इस सूत्र में जो विषय-वैराग्य बताया गया है, वह रजो-गुणात्मक और तमोगुणात्मक विषयों का है। रज और तम का सर्वथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्याग करने से 'विषय वश में हैं' ऐसा अनुभव आने लगता है। परन्तु जब तक सत्त्वगुण की आसक्ति बनी रहेगी, तब तक पूर्ण शान्ति का अनुभव नहीं आ सकता।

(सत्त्वगुण की वितृष्णा अर्थात् 'पर-वैराग्य' अगले सूत्र में बताया गया है।)

× × ×

१६. तत् परं पुरुषख्यातेः गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

पुरुषख्यातेः	: आत्मज्ञान से
गुणवैतृष्ण्यम्	: सत्त्वगुण की भी आसक्ति का नाश होता है,
तत्	: वह
परम्	: पर-वैराग्य है।

सत्त्वगुण की आसक्ति का त्याग रज-तम की आसक्ति के त्याग से अधिक कठिन है, क्योंकि सत्त्वगुण का सम्बन्ध मृत्यु तक नहीं टूटता। वह अखण्ड रहनेवाला है। इसलिए बहुत सचेत रहना पड़ता है। संबंध के रहते हुए भी तद्विषयक आसक्ति तो छोड़ ही सकते हैं और वह आसक्ति आत्मज्ञान के बिना नहीं छूटती। आत्मज्ञान किस तरह प्राप्त किया जाय, यह बताना योगशास्त्र का विषय है।

(यही बात अगले सूत्र में चार भूमिकाओं द्वारा बतायी गयी है।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥ १७ ॥

वितर्क	: परस्पर विरुद्ध सदसद्विचार, कल्पनाएँ, भावनाएँ;
विचार	: असद्विचार और असद्भावनाओं को हटानेवाले सद्विवेक-विचार;
आनन्द	: विचार की आसक्ति नष्ट हो जाने के बाद का आनन्द, शांति,
अस्मिता	: सबके साथ लगी रहनेवाली और बन्धन में डालनेवाली 'अहंकार' नामक वृत्ति । (इन चारों के)
अनुगमात्	: निरोध के बाद आनेवाली स्थिति
सम्प्रज्ञातः	: सम्प्रज्ञात योग कहलाती है ।

यह सूत्र महत्त्वपूर्ण है। इसमें क्रमशः चार भूमिकाएँ बतायी गयी हैं। पाँचवीं भूमिका आत्मदर्शन की है।

१. वितर्क-निरोध : साधनपाद के ३४ वें सूत्र में 'वितर्क' का अर्थ बताया है—'वितर्काः हिंसादयः'—यानी हिंसा, असत्य आदि को 'वितर्क' कहते हैं। इस सूत्र में वही अर्थ लेना है, 'विशेष तर्क' नहीं। साधक या मुमुक्षु अभ्यास और वैराग्य की साधना कर रहा है। उस साधना-काल की पहली भूमिका वितर्क-निरोध की है। वितर्क यानी सद्-असद् विचार का द्वन्द्व, संघर्ष। पंचवृत्ति-निरोध का अभ्यास, विषय-वैराग्य तथा सत्त्वगुण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्य की साधना की बात पिछले सूत्रों में बतायी है। जब साधना शुरू करते हैं, तब मन में परस्पर विरुद्ध विचारों और भावनाओं का संघर्ष चलने लगता है। तब अपवित्र विचारों को हटाने के लिए पवित्र विचारों का सेवन करते रहना चाहिए। इस प्रकार अपवित्र विचारों और भावनाओं का पूरा निरोध हो जाय, तब समझना चाहिए कि 'वितर्क-निरोध' नामक पहली भूमिका प्राप्त हो गयी।

२. विचार-निरोध : वितर्क-निरोध की भूमिका में सद्-विचार और विवेक हस्तगत होता है। लेकिन सद्-विचार की भी आसक्ति हो जाती है। साधक सोचने लगता है कि 'मैंने असद्-विचारों पर खूब काबू पा लिया'। यह 'अस्मिता' यानी अहंकार कहलाता है। इसके रहते शांति या आनन्द की भूमिका प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए वितर्क-निरोध के बाद सद्-विचार का निरोध करना होता है। इस प्रकार सद्-विचारों और सद्-भावनाओं की आसक्ति का निरोध सध जाय, तब समझना चाहिए कि 'विचार-निरोध' की भूमिका प्राप्त हो गयी।

३. आनन्द-निरोध : जहाँ सद्-विचारों की आसक्ति छूट गयी, वहाँ आनन्द और शांति का अनुभव आना ही चाहिए। इस आनन्द-भूमिका में साधक को बहुत सतर्क रहना पड़ता है। इसमें उन्माद-वृत्ति बढ़ सकती है। इस भूमिका में अहंकार बहुत प्रबल होता है। साधक यदि आनन्द के जोश में अहंकार का जोर न पहचाने, तो सद्-आचरण से च्युत हो सकता है। तब वह अक्सर महंत बन बैठेगा, शिष्यों का अड्डा जमा लेगा। 'सिद्ध' बनकर सारी साधना को मिट्टी में मिला देगा। सद्-विचारों को वश में करने से जो आनन्द प्राप्त हुआ था, वह वश भी नष्ट हो जायगा। इसलिए उस आनन्द का निरोध करना आवश्यक है।

आनन्द की आसक्ति या भान को, यानी, अस्मिता को मिटाना ही 'आनन्द-निरोध' है। आनन्द के अनुभव में कोई विशेषता नहीं है। मुझे आनन्द का अनुभव आया, इसका अर्थ यह है कि मैं आनन्द से भिन्न हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस आत्म-भिन्नता के अनुभव में आनन्द का अनुभव नष्ट नहीं होता, बल्कि अपार शांति का अनुभव आता है, परन्तु उस आनन्द का भान नहीं रहता। यदि आनन्द की आसक्ति का निरोध करने में हम सफल होते हैं, तो समझना चाहिए कि हमको आनन्द-निरोध की तीसरी भूमिका प्राप्त हुई।

४. अस्मिता-निरोध : 'अस्मिता-निरोध' भूमिका यानी आत्मदर्शन की भूमिका। यह अंतिम भूमिका है। सद्विचार स्थिर किया, उसका अहंकार नष्ट करके आनन्द प्राप्त किया, फिर आनन्द की अस्मिता नष्ट की। इस प्रकार तीन भूमिकाएँ प्राप्त कर, तीनों के पीछे विद्यमान अहंकार को भी उखाड़ दिया। साधक काफी ऊँची भूमिका में पहुँच गया है लेकिन इस अनहंकार की उच्च भूमिका के पीछे भी अस्मिता रहती है। अनहंकार का भी अहंकार होने लगता है। इसलिए इस अनहंकार के भान को यानी उस अस्मिता को उखाड़ना है। इसमें यदि सफल होते हैं, तो समझना चाहिए कि आत्मदर्शन की अंतिम भूमिका प्राप्त हुई। आत्मा केवल अकर्ता, साक्षी ज्ञाता है। हमें भी अस्मिता का परदा हटाकर अकर्ता, साक्षी में मिल जाना है, स्वयं शून्य बनकर आत्म-सत्ता को प्राप्त करना है।

विनोबाजी ने इन भूमिकाओं की सुन्दर व्याख्या की है। वे कहते हैं : "हमारे मन में परस्पर विरुद्ध विचार उठा करते हैं। इसका नाम 'वितर्क' है। यह विरोध मिटाने की कला सध गयी, तो दूसरी 'विचार-भूमिका' प्राप्त होती है। विचार यानी विवेक हस्तगत होता है। तब उसमें 'आनन्द' का अनुभव आना ही चाहिए। क्योंकि, विवेक और विचार से मन का सारा संघर्ष जब नष्ट हो जाता है, तब द्वैत मिट जाता है और द्वैत के मिटने पर शान्ति और आनन्द के सिवा और कौन-सी स्थिति रह सकती है ? फिर, जहाँ द्वैत-रहित आनन्द का अनुभव आया, वहाँ अस्मिता व्यापक होने लगती है। वह इतनी व्यापक होती है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव होने लगता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इसका अर्थ है 'मैं शून्य हूँ'। व्यापक होते-होते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मिता का स्वरूप ब्रह्म में लीन हो जाता है। यही 'ब्राह्मी स्थिति' या 'आत्मदर्शन' है।"

(अगले सूत्र में असम्प्रज्ञात भूमिका का विवेचन किया गया है।)

× × ×

१८. विराम-प्रत्ययाभ्यास-पूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

विराम	: अस्मिता के अन्त या अस्मिता के शमन (और)
प्रत्यय	: प्रत्यय का
अभ्यास-पूर्वः	: अभ्यास हो जाने के बाद
संस्कारशेषः	: जो संस्कार रह जाता है, वह
अन्यः	: दूसरा यानी असंप्रज्ञात योग है।

जहाँ भान का अस्तित्व है, वह अवस्था 'सम्प्रज्ञात योग' कहलाती है। अस्मिता की अंतिम भूमिका में अनहंकार का अहंकार नष्ट कर देने पर भी उसका भान पूरी तरह मिट नहीं जाता। वह तो अस्मिता के विराम-प्रत्यय का अभ्यास हो जाने के बाद ही मिट सकता है। भान के मिटने का अर्थ है, सहजावस्था का प्राप्त होना। आत्मदर्शन की सहजावस्था ही असम्प्रज्ञात योग है। आत्मदर्शन में अस्मिता के विराम-प्रत्यय का अनुभव आता है और उसका अभ्यास हो जाने से जो सहज संस्कार रह जाता है, वह 'असम्प्रज्ञात योग' है। आत्मसत्ता की प्राप्ति के बाद जीवन में उसकी सहजधारा बहने लगती है, वही असम्प्रज्ञात योग है। निद्रा में अभाव-प्रत्यय होता है, समाधि में प्रत्ययाभाव और असम्प्रज्ञात भूमिका में विराम-प्रत्यय।

(ये सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात भूमिकाएँ किसको कब प्राप्त हो सकती हैं, यह अगले प्रकरण का विषय है।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१९. भवप्रत्ययः विदेह-प्रकृति-लयानाम् ॥ १९ ॥

विदेह-प्रकृति-लयानाम् : प्रकृति को यानी माया को हटा-कर, जिन्होंने पूर्व-जन्म में ही वैराग्य प्राप्त कर लिया, उनको

भवप्रत्ययः : (बाल्य में ही) योग-भूमिका का प्रत्यय यानी अनुभव आता है।

इसके उदाहरण ज्ञानेश्वर और शंकराचार्य हैं। ये उदाहरण उच्चकोटि के हैं। ऐसे और भी उदाहरण मिलेंगे। जिनकी पूर्व-जन्म की इतनी तपश्चर्या नहीं है, उनको प्रयत्न करना पड़ेगा।

(इसका एक क्रम अगले सूत्र में दिया है।)

× × ×

२०. श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा-पूर्वकः इतरेषाम् ॥ २० ॥

श्रद्धा : शास्त्रों और सन्तों पर निष्ठा,

वीर्य : ब्रह्मचर्य आदि व्रत-नियम-पालन से उत्पन्न होनेवाला ओज,

स्मृति : अस्मिता का परदा हटाकर बहनेवाली आत्म-स्मृति की धारा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाधि : सर्वत्र हरिदर्शन, हरिमयता, और

प्रज्ञा-पूर्वकः : प्रज्ञा के द्वारा (जो बुद्धि उक्त चतुर्विध साधनों से क्रमशः शुद्ध होती है, वह 'प्रज्ञा' कहलाती है।)

इतरेषाम् : दूसरों को यानी जिनकी पूर्व-जन्म की साधना तीव्र नहीं है, उनको योग-भूमिका प्राप्त होती है।

सर्वविध साधनाओं से, अंत में अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि यानी 'प्रज्ञा' प्राप्त होती है। यही विमल बुद्धि आत्मदर्शन का, हरिदर्शन या परमशांति का साधन है। सभी साधनाएँ चित्त-शुद्धि की पराकाष्ठा तक पहुँचने के लिए ही हैं।

(साधन-क्रम बताया गया। अब अगले सूत्र में यह बताते हैं कि ये भूमिकाएँ कब प्राप्त होंगी।)

× × ×

२१. तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः ॥ २१ ॥

तीव्रसंवेगानाम् : जिसमें तीव्र संवेग यानी परम व्याकुलता या तीव्र जिज्ञासा हो, उनको

आसन्नः : बहुत शीघ्र (साधना का फल मिलेगा)।

व्याकुलता या जिज्ञासा का आधार चित्तशुद्धि है। चित्तशुद्धि जितनी ज्यादा होगी, उतने प्रमाण में व्याकुलता या जिज्ञासा बढ़ेगी।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

ततः अपि	: जिज्ञासा या व्याकुलता के तीव्र होने पर भी
मृदु	: (प्रयत्न में) मृदु या कम मात्रा,
मध्य	: मध्यम मात्रा और
अधिमात्रत्वात्	: अतिमात्रा, (ऐसे तीन प्रकार) होने से
विशेषः	: फल मिलने में भी विशेष यानी अंतर पड़ता है।

सत्संगति से तीव्र जिज्ञासा पैदा हो, तो भी फल मिल जायगा, ऐसी बात नहीं है। तीव्र जिज्ञासा के साथ-साथ प्रयत्न की मात्रा के अनुसार ही फल मिलता है। तीव्र जिज्ञासा होते हुए भी यदि प्रयत्न मन्द रहा, तो योग-भूमिका प्राप्त करने में समय लगेगा।

(अगले सूत्र से ईश्वर-प्रणिधान शुरू होता है।)

ईश्वर-प्रणिधान : ६ :

२३. ईश्वरप्रणिधानाद् वा ॥ २३ ॥

वा	: और या अथवा
ईश्वर-प्रणिधानात्	: ईश्वर-शरणता से यानी समर्पण से (योग प्राप्त होता है।)

यह प्रकरण महत्त्वपूर्ण है।

'वा' शब्द के अर्थ के बारे में स्व० श्री किशोरलालभाई मशरूवाला का मत था कि योग-प्राप्ति के ये दो उपाय हैं—एक, अभ्यास-वैराग्य,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा, ईश्वर-प्रणिधान। विनोबाजी का मत है कि अभ्यास-वैराग्य को ईश्वर-प्रणिधान का सहारा देना है। दोनों उपायों से योग-भूमिका प्राप्त करनी है। मुझे विनोबाजी का अर्थ जँचता है।

सृष्टि में एक ही तत्त्व है, फिर भी माया के कारण पिण्ड और ब्रह्माण्ड के रूप में उसके दो विभाग होते हैं। पिण्ड में जो तत्त्व है, उसको जीव, आत्मा, साक्षी या ज्ञाता के नाम से पहचानते हैं। ब्रह्माण्ड में भी वही तत्त्व है, लेकिन मायारूपी आवरण के कारण उसको 'ईश्वर' कहते हैं। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त-निरोध करके सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात-भूमिका प्राप्त करने के बाद पिण्ड में निहित आत्मतत्त्व को पहचानना आत्मदर्शन की एक उच्च भूमिका है। सांख्य और जैन इसी अंतिम भूमिका पर स्थिर हुए हैं। वे इसी आत्मतत्त्व को 'चेतन' कहते हैं। ब्रह्माण्ड के पीछे जो तत्त्व है, उसे वे जड़ मानते हैं। इसलिए उनके मतानुसार पिण्ड में निहित आत्मतत्त्व को पहचानने के अलावा और कोई भूमिका नहीं है।

पतंजलि ने सांख्य-तत्त्वज्ञान स्वीकार करते हुए और उसीको प्राधान्य देते हुए भी ईश्वर (पुरुष) को स्वीकार किया है। इसलिए उन्होंने ईश्वर-शरणता को साधन बताया है। 'ईश्वर-प्रणिधान' शब्द योग-दर्शन में सिर्फ चार बार आया है। यहां पहली बार आया है और साधनपाद में तीन बार आया है। चूंकि ईश्वर-प्रणिधानरूपी साधन का विवेचन भगवद्गीता आदि अन्यान्य शास्त्र-ग्रंथों में पर्याप्त रूप में किया गया है, इसलिए योग-दर्शन में तत्सम्बद्ध सूत्र ज्यादा देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई होगी। यही कारण हो सकता है कि इस ग्रंथ में ईश्वर-प्रणिधानरूपी साधन को गौणत्व दिया-सा मालूम होता है। परन्तु मेरे ख्याल से अभ्यास और वैराग्य का जितना महत्त्व है, उतना ही ईश्वर-प्रणिधान का है।

पिण्ड में निहित आत्मतत्त्व को पहचानना एक भूमिका है, ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर-तत्त्व को पहचानना दूसरी भूमिका है। दोनों मिलकर 'पूर्ण-योग' होता है—ऐसा मेरा मानना है। ईश्वर-तत्त्व को पहचानने के लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर-शरणता, ईश्वर-समर्पण ही मुख्य साधन है। इस सूत्र में यही बताया गया है।

(अगले तीन सूत्रों में ईश्वर का स्वरूप बताया गया है।)

× × ×

२४. क्लेश-कर्म-विपाकाशयैः अपरामृष्टः पुरुष-विशेषः ईश्वरः ॥ २४ ॥

क्लेश	: (साधनपाद में बताये गये पाँच) क्लेश,
कर्म	: सत्-असत् कर्म,
विपाक	: उनके शुभ-अशुभ फल,
आशयैः	: संचित कर्म—इन सबसे
अपरामृष्टः	: अत्यन्त अलिप्त
पुरुष-विशेषः	: विशिष्ट पुरुष
ईश्वरः	: ईश्वर है।

इसमें ईश्वर की अलिप्तता बतायी गयी है।

× × ×

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

तत्र	: उस ईश्वर में
निरतिशयम्	: अपार
सर्वज्ञ-बीजम्	: सर्वज्ञता का बीज है।

बीज का अर्थ है शक्ति, सामर्थ्य। इस सूत्र में ईश्वर की सर्वज्ञता बतायी गयी है। 'बीज' शब्द इस बात का सूचक है कि सर्वज्ञता कभी नष्ट नहीं होगी।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२६. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात् ॥ २६ ॥

सः	: वह ईश्वर
कालेन	: काल से
अनवच्छेदात्	: अखण्डित, अमर्यादित होने के कारण
पूर्वेषाम्	: प्राचीन ऋषि-मुनियों का
अपि	: भी
गुरुः	: गुरु है।

प्राचीन ऋषि-मुनियों को ईश्वर का जो साक्षात्कार हुआ, वह भी ईश्वर के अनुग्रह से ही हुआ। इसलिए ईश्वर को उनका भी गुरु समझना चाहिए।

इन तीनों में से पहले सूत्र में ईश्वर की अलिप्तता, दूसरे में सर्वज्ञता और तीसरे में अविनाशिता, अनन्तता बतायी गयी है। जीव लिप्त, अल्पज्ञ और काल से मर्यादित है।

(अगले दो सूत्रों में ईश्वर का नाम और जप बतलाया गया है।)

× × ×

२७. तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

तस्य	: उस ईश्वर का
वाचकः	: नाम
प्रणवः	: ॐ है।

ऋषि-मुनियों ने ॐ का ही जप किया। यह निर्गुण नाम है। गीता के आठवें अध्याय में प्रणव-जप का उल्लेख आया है। ॐ ध्यानमार्गी या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगमार्गियों का नाम है। भक्तिमार्गियों का नाम राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द आदि है। ईश्वर के नाम अनन्त हैं।

× × ×

२८. तज्जपः तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

तत्	: उस ईश्वर-नाम का
जपः	: जप
तत्	: उसके
अर्थ	: स्वरूप में
भावनम्	: भक्ति पैदा करने के लिए करना चाहिए।

(अगले सूत्र में ईश्वर-प्रणिधान का फल बताया गया है।

× × ×

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायाभावः च ॥ २९ ॥

ततः	: इस प्रकार के ईश्वर-प्रणिधान से
प्रत्यक् चेतन-अधिगमः अपि	: प्रत्यगात्मा (साक्षी) का ज्ञान (साक्षात्कार) भी हो जाता है।
च	: और
अन्तराय	: योगमार्ग में जो विघ्न आते हैं उनका
अभावः	: अभाव हो जाता है।

ईश्वर-प्रणिधान बहुत बलवान् और अत्यन्त सुलभ साधन माना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया है। ईश्वर-प्रणिधान से पिण्ड में विद्यमान आत्मतत्त्व का ज्ञान तथा ब्रह्माण्ड में विद्यमान ईश्वर-तत्त्व का दर्शन हो जाता है। यह ईश्वर-शरणता की विशेषता है। केवल अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्त-निरोध के पीछे पड़े हुए साधक को आत्मतत्त्व का ज्ञान जरूर होगा। और एक ही आत्म-तत्त्व मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि समस्त चेतनयोनि में दिखाई देगा। इसलिए उसे पशु-पक्षी आदि में आत्मतत्त्व दृष्टिगोचर होगा तथा वह उनके साथ समभाव से व्यवहार करने की चेष्टा करेगा। लेकिन इस चेतनयोनि के अलावा जो जड़ सृष्टि है, उसमें व्याप्त आत्मतत्त्व को देखने की दृष्टि ईश्वर-तत्त्व के स्वीकार तथा उसके प्रति समर्पण-भावना के बिना नहीं मिलेगी, यह निश्चय सिद्धांत है। लेकिन चूँकि जड़ सृष्टि में जो चेतनतत्त्व है, वही मनुष्य, पशु, पक्षी आदि समस्त चेतनयोनि में भी है, इसलिए पिण्ड और ब्रह्माण्ड में निहित उस एक ही अद्वितीय तत्त्व की जो शरण जाता है, उसको आत्मज्ञान तथा हरिदर्शन दोनों हो जाते हैं। आत्मज्ञान होने से 'मैं देह हूँ'—यह भावना सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है और 'पदार्थमात्र हरिमय है'—इस प्रकार के हरिदर्शन से विश्व का पदार्थविषयक मोह नष्ट हो जाता है और साधक अपनी शून्यता का अनुभव करके उस एक अद्वितीय तत्त्व में लीन हो जाता है। यही समाधि है।

(आगे समापत्ति-प्रकरण में इस समाधि का वर्णन आयेगा।)

अन्तराय और उन्हें जीतने का उपाय : ७ :

३०. व्याधि - स्त्यान - संशय - प्रमादालस्याविरति-भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपाः, ते अन्तरायाः ॥ ३० ॥

व्याधि : शारीरिक रोग,

स्त्यान : मानसिक निरुत्साह,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संशय	: आत्मा और ईश्वर के विषय में परस्पर विरुद्ध तर्क और अनिश्चय,
प्रमाद	: दुर्लक्ष्य, मानसिक जड़ता,
आलस्य	: शारीरिक जड़ता एवं तमोगुण की वृद्धि,
अविरति	: विषयोपभोग की लालसा,
भ्रान्ति-दर्शन	: विपरीत निश्चय, आत्मा, ईश्वर, योग-भूमिका आदि विषयक उलटा ज्ञान,
अलब्ध-भूमिकत्व	: प्रयत्नशील रहने पर भी योग-भूमिका का प्राप्त न होना,
अनवस्थितत्वानि	: योग-भूमिका प्राप्त होने के बाद उस पर टिक न सकना, ये
चित्त-विक्षेपाः	: चित्त-विक्षेप (साधना में उपस्थित होते) हैं।
ते	: वे
अन्तरायाः	: अन्तराय हैं, यानी योग-भूमिका, आत्मदर्शन और हरिदर्शन प्राप्त करने में विघ्नरूप हैं।

इस सूत्र में कुल नौ अन्तरायों का वर्णन किया गया है। शंकराचार्य ने 'अपरोक्षानुभूति' में श्लोक १२७ और १२८ में आठ विघ्नों का वर्णन किया है : (१) अनुसंधान-राहित्यम्=आत्मा या ईश्वर का अनुसन्धान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छूट जाना, (२) आलस्यम् = आलस्य, (३) भोगलालसा = भोगों की इच्छा, (४) लयः = निद्रा, (५) तमः = मोह, (६) विक्षेपः = विषम प्रसंग, (७) रसास्वादः=स्वादिष्ट पदार्थ खाने की इच्छा और (८) शून्यता = मन का शून्य बन जाना।

(इनके साथ पैदा होनेवाले चार विक्षेपों का वर्णन अगले सूत्र में है।)

× × ×

३१. दुःख-दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासाः विक्षेप-सहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख	: विह्वलता,
दौर्मनस्य	: निराशा, उदासीनता,
अङ्गमेजयत्व	: शरीर के अवयवों का काँपना,
श्वास-प्रश्वासाः	: साँस का असमान होना, बीच में रुक जाना, ये चार विक्षेप
विक्षेप-सहभुवः	: उक्त नौ विक्षेपों (अंतरायों) के साथ पैदा हो जाते हैं।

(अगले सूत्रों में इन नौ अंतरायों और चार विक्षेपों–यानी कुल तेरह विघ्नों पर विजय प्राप्त करने के उपायों का वर्णन है।)

× × ×

३२. तत्प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

तत्	: उनके
प्रतिषेधार्थम्	: निवारण के लिए
एकतत्त्व	: एक तत्त्व का
अभ्यासः	: अभ्यास करना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संशय, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व—इन चार अन्तरायों को दूर करने के लिए उन विषयों का गहरा अभ्यास करना चाहिए। चिन्तन के लिए शास्त्र का अध्ययन और अनुभवी व्यक्तियों का मार्गदर्शन आवश्यक है। ये चार अन्तराय केवल मानसिक हैं। इसलिए जिस विषय के बारे में संशय हो या जो भूमिका प्राप्त न होती हो या प्राप्त होने पर जो टिकती न हो, उस संशय को मिटाने, उस भूमिका को प्राप्त करने और टिकाने के लिए चिन्तन ही एक मार्ग हो सकता है।

× × ×

३३. मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणाम् सुख-दुःख-पुण्यापुण्य-विषयाणाम् भावनातः चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुख	: सुख देनेवाले
दुःख	: दुःख देनेवाले
पुण्य	: अच्छे
अपुण्य	: बुरे
विषयाणाम्	: विषयों में (यानी पदार्थों के साथ संबंध आता है, तब)
मैत्री	: मित्रता
करुणा	: दया
मुदिता	: आनन्द
उपेक्षाणाम्	: उपेक्षा यानी तटस्थता—इन चारों की
भावनातः	: भावना करने से
चित्त-प्रसादनम्	: चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधक अभ्यास-वैराग्य और ईश्वर-प्रणिधान का प्रयत्न तो करता है, लेकिन सामने जो सृष्टि खड़ी है, उससे बच नहीं सकता। उससे संबंध आने से मन में काम, क्रोध आदि विकार उठते हैं। यदि उन विकारों को हटाने में साधक सफल नहीं होता है, तो स्त्यान (निरुत्साह), दुःख और दौर्मनस्य (निराशा, उदासीनता) –ये तीन दुर्बल वृत्तियां (अंतराय) साधक के मार्ग में बाधक बनती हैं। इनको दूर करने के लिए चार उपाय इस सूत्र में बताये हैं :

१. मैत्री : हम यदि सारे संसार के साथ मित्रता का भाव रखते हैं, तो कोई हमारा अपमान या तिरस्कार करेगा तो भी उस मित्रभाव के कारण हमारे मन में दुःख की वृत्ति नहीं उठेगी।

२. करुणा : यदि दया भाव का उत्कर्ष करते हैं, तो किसी का अपराध देखकर क्रोध के बजाय क्षमा-वृत्ति जागेगी।

३. मुदिता : यदि मुदिता का अभ्यास करते हैं, तो सृष्टि के प्रति दोष-दृष्टि के बजाय गुण-दृष्टि ही रहेगी और सृष्टि के भिन्न-भिन्न जड़ और चेतन पदार्थ देखकर उनमें विद्यमान गुणों का चिन्तन करते-करते गुणों का ही अनुभव करने लगेंगे।

४. उपेक्षा : उपेक्षा-भाव का अभ्यास होने पर सृष्टि में चलनेवाले पापाचरण को देखकर निराशा नहीं होगी, बल्कि उसके प्रति तटस्थभाव रहेगा।

× × ×

३४. प्रच्छर्दन-विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

वा	: और
प्राणस्य	: प्राण के, यानी सब इन्द्रियों के
प्रच्छर्दन	: विषयत्याग, और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधारणाभ्याम् : विषयग्रहण पर नियंत्रण रखने से (भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।)

इस सूत्र में व्याधि, अंगमेजयत्व (कँपकँपी) और श्वास-प्रश्वास—इन तीन शारीरिक अंतरायों को हटाने के उपाय बताये हैं। यहाँ प्राण का संकुचित या सीमित अर्थ करने से सूत्र का अर्थ ठीक नहीं बैठेगा। इसलिए प्राण यानी दसों इंद्रियाँ—ऐसा व्यापक अर्थ लेना चाहिए।

रोग का कारण मुख्यतः इन्द्रियों का असंयम है। अच्छा काम भी यदि मर्यादा से अधिक करें, खाने-पीने में मात्रा का ध्यान न रखें, कब्ज का कोई उपचार न करें, तो रोग हो जाता है। पूरी जानकारी प्राप्त किये बिना ही कोई प्राणायाम के पीछे पड़ता है, तो उसे दमा हो जाता है। फिर साँस संतुलित नहीं रह पाती, उल्टी-सीधी चलने लगती है। इसलिए सभी इंद्रियों को विवेक और निग्रहपूर्वक संयम में रखकर, मध्यम मार्ग से चलकर शरीर को नीरोग रखना योगाभ्यास के लिए आवश्यक है।

इन्द्रियाँ पदार्थों को ग्रहण करती हैं। यह 'विधारण' कहलाता है। कुछ पदार्थों का त्याग उन्हें करना पड़ता है। यह 'प्रच्छर्दन' कहलाता है। जब इंद्रियों के विषय-ग्रहण और त्याग में संयम दाखिल होता है, तब रोग काबू में आता है और शरीर नीरोग बन सकता है। संयम के साथ ज्ञान यानी विवेक होना ही चाहिए।

× × ×

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ॥ ३५ ॥

वा : यदि

विषयवती : विषयवान् यानी उदात्त ध्येयवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवृत्तिः	: प्रवृत्ति
उत्पन्ना	: उत्पन्न की जाय, तो (वह प्रवृत्ति)
मनसः	: मन की
स्थिति	: स्थिति को यानी मानसिक जड़ता को
निबन्धनी	: बाँध देती है, यानी हटा देती है।

इस सूत्र में प्रमाद और आलस्य पर विजय पाने का उपाय बताया गया है। साधनाकाल में साधक को यदि प्रमाद और आलस्य का अनुभव होने लगता है, तो निवृत्ति कम करके किसी उदात्त ध्येयवाली प्रवृत्ति में लगना चाहिए। प्रवृत्ति से शारीरिक जड़ता क्षीण होकर तज्जन्य मानसिक आलस्य भी नष्ट हो सकेगा।

(यह प्रवृत्ति किस प्रकार की होनी चाहिए, यह अगले सूत्र में बताया गया है।)

× × ×

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

विशोका	: (वह प्रवृत्ति) शोक दूर करने-वाली
वा	: और
ज्योतिष्मती	: प्रकाश यानी आत्मज्ञान बढ़ाने-वाली होनी चाहिए।

ध्येययुक्त प्रवृत्ति के लिए यहाँ दो महत्त्वपूर्ण शर्तें सूचित की गयी हैं। अच्छी प्रवृत्ति में भी मर्यादा का ख्याल न रहने से साधक शोक-मोह में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फँस जाता है। प्रमाद और आलस्य के गढ़े से निकलने के लिए अच्छी प्रवृत्ति प्रारंभ करता है और रजोगुण यानी लोभ के वश होकर प्रवृत्ति इतनी बढ़ा लेता है कि शोक-मोह के गढ़े में गिर पड़ता है। तमोगुण से निकलकर रजोगुण में फँस जाता है और आत्मज्ञान का रास्ता रोक देता है। इसलिए प्रवृत्ति में इन दो शत्रुओं का ठीक ध्यान रखना आवश्यक है।

× × ×

३७. वीतरागविषयम् वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

वा	: और (अविरति का अंतराय हटाने के लिए)
चित्तम्	: चित्त पर
वीतराग-विषयम्	: वैराग्य पैदा करनेवाले विषयों का रंग चढ़ाना चाहिए, अर्थात् चित्त को वैराग्योत्पादक विषयों की रुचि लगानी चाहिए।

अविरति के अन्तराय को अन्त में लिया गया है। इसके लिए दो सूत्र हैं। इस अंतराय को हटाने में अधिक समय लगता है। लेकिन जब तक इसे हटाते नहीं हैं, तब तक आत्मदर्शन या हरिदर्शन नहीं हो सकता। वैराग्य प्राप्त करने का उपाय इस सूत्र में यह बताया है कि वैराग्य को बढ़ानेवाले विषयों का दीर्घकाल तक सम्बन्ध रखते हुए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उनका चसका लग जाय। जैसे, बहुतों को सिनेमा या उपन्यास का चसका लगता है, वैसा चसका वैराग्य-विषयों का लगना चाहिए।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८. स्वप्न-निद्रा-ज्ञानालम्बनम् वा ॥ ३८ ॥

वा	: और
स्वप्न-निद्रा	: स्वप्न और निद्रा का विश्लेषण और पृथक्करण करके
ज्ञान	: जो विवेक प्राप्त होता है, उसके
आलम्बनम्	: सहारे (भी वैराग्य पैदा हो सकता है)।

शंकराचार्य हमेशा स्वप्न और निद्रा का उदाहरण देते हैं। वैराग्य साधने के लिए साधक को स्वप्न और निद्रा का विश्लेषण हमेशा करते रहना चाहिए। इस प्रकार के विश्लेषण से सृष्टि का मिथ्यापन या निःसारता अच्छी तरह ध्यान में आने लगती है। सृष्टि का मिथ्यापन और निःसारता यदि मन में जम जाती है, तो सृष्टिगत भिन्न-भिन्न पदार्थों की आसक्ति नष्ट होती है और वैराग्य का अनुभव आने लगता है।

(३२ से ३८ तक के ७ सूत्रों में ९ अंतरायों और ४ विक्षेपों—कुल १३ विघ्नों को हटाने के अलग-अलग उपाय बताये हैं। अगले सूत्र में साधक को इच्छा-स्वातंत्र्य दिया है।)

× × ×

३९. यथाभिमतध्यानाद् वा ॥ ३९ ॥

वा	: अथवा
यथा अभिमत	: जो उपाय इष्ट या प्रिय लगे, उसका
ध्यानात्	: सहारा लेने से (अन्तराय को मिटा सकते हैं)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् ने भी अर्जुन को सारी गीता सुनाकर अंत में कहा:'यथेच्छसि तथा कुरु'—जैसा ठीक लगे, वैसा करो। योग-सूत्रकार ने भी सारे उपाय बताकर अंत में यही सिफारिश की है। संसार में इतने अलग-अलग संस्कार और स्वभाव देखने में आते हैं कि निश्चित रूप से कहना कठिन है कि अमुक अन्तराय हटाने में अमुक ही उपाय सफल होगा।

(अगले सूत्र में बताते हैं कि अन्तरायों को मिटाकर कहाँ पहुँचना है।)

× × ×

४०. परमाणु-परम-महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

परम-अण	: सृष्टि के छोटे-से-छोटे पदार्थ से लेकर
परम	: बहुत ही
महत्त्वान्तः	: बड़े-से-बड़े पदार्थ तक (सब पदार्थ)
अस्य	: साधक के
वशीकारः	: वश में हैं (ऐसा अनुभव आना चाहिए)।

सब अन्तरायों को हटाकर प्रथम पाद के सूत्र सं० १५ में जो 'अपर-वैराग्य' बताया है, वहाँ तक साधक को पहुँचना है। उस सूत्र में 'वशीकार' शब्द ही आया है। अन्तरायों के मिटाने से 'अपर-वैराग्य' और बाद में 'पर-वैराग्य' सिद्ध होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४१. क्षीणवृत्तेः अभिजातस्येव मणेः ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

क्षीणवृत्तेः	: जिसकी सब वृत्तियाँ क्षीण यानी शुद्ध हो गयी हैं, उसको
अभिजातस्य	: अत्यन्त निर्मळ
मणेः इव	: शीशे की तरह
ग्रहीतृ	: ग्रहण करनेवाळा, ज्ञाता, क्षेत्रज्ञ, जीवात्मा
ग्रहण	: ग्रहण करने के साधन, इन्द्रियाँ
ग्राह्येषु	: जिनका ग्रहण करते हैं, वह सारी सृष्टि के पदार्थ-मात्र
तत्स्थ	: इन तीनों में विद्यमान मूळ स्वरूप, मूळ तत्त्व
तत्	: उस मूळ तत्त्व का,
अञ्जनता	: प्रकट होना, यानी उस वास्तविक स्वरूप का दर्शन होना
समापत्तिः	: 'समापत्ति' यानी साक्षात्कार है।

समापत्ति का अर्थ है दर्शन, साक्षात्कार। स्वच्छ शीशे के सामने जो भी पदार्थ रखा जाय, शीशे में उसका प्रतिविम्ब पड़ता है, यानी उस पदार्थ का पूर्ण स्वरूप-दर्शन उस शीशे में होता है। उसी प्रकार जिसका मनरूपी शीशा अत्यन्त विशुद्ध हो गया हो, उस सिद्ध पुरुष के सामने जो भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदार्थ आये, वह पदार्थ जिस तत्त्व से व्याप्त हुआ है, उस तत्त्व का यानी ईश्वर-तत्त्व का उसे दर्शन होता ही है।

(आगे के चार सूत्रों में ब्रह्माण्ड के चार दर्शन बताये गये हैं। सामान्य लोगों को, जिनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ है, जो दर्शन होता है, उसे 'सवितर्क समापत्ति' कहते हैं। अगले सूत्र में उसका स्पष्टीकरण है।)

× × ×

४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

तत्र	: उसमें
शब्द-अर्थ-ज्ञान-विकल्पैः	: शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प से
संकीर्णा	: सृष्टि के बारे में जो मिश्र यानी अशुद्ध दर्शन है, वह
सवितर्का समापत्तिः	: 'सवितर्क समापत्ति' कहलाती है।

सृष्टि में पांचभौतिक असंख्य पदार्थ हैं। उन पदार्थों के भिन्न-भिन्न रूप, आकृति और गुण हमें दिखाई देते हैं। भिन्न-भिन्न रूपाकृति के अनुसार हम उनको अलग-अलग नाम देते हैं। जो भी पदार्थ हमारे सामने आता है, पहले उसका नाम हमारे ध्यान में आता है, उसके बाद उस शब्द का अर्थज्ञान होता है। इस अर्थज्ञान के बाद अच्छे-बुरे विकल्प यानी विशेष कल्पनाएँ मन में उठती हैं। तब ज्ञान-क्रिया समाप्त होती हैं। यह जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह सत्य-ज्ञान है या मिथ्या-ज्ञान, इसका गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि इस प्रकार प्राप्त होनेवाला ज्ञान वास्तव में मिथ्या-वस्तु का है। जैसे छाया का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, वैसे ही रूप, आकृति और गुण भी किसी दूसरी वस्तु के सहारे ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहते हैं। रूप, आकृति और गुण स्वतंत्र पदार्थ नहीं हैं। ये जिस द्रव्य या जिस तत्त्व के सहारे रहते हैं, उस तत्त्व का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता, जब तक चित्त स्वच्छ शीशे के समान अत्यंत विशुद्ध न हो जाय। घड़ा मिट्टी से भिन्न न होने के कारण जैसे मिथ्या है, वैसे ही मूल कारण-रूप तत्त्व से रूप, आकार और गुण का भिन्न अस्तित्व न होने के कारण ये भी मिथ्या हैं। हम चित्तशुद्धि के और विवेक के अभाव में उन रूपों, आकृतियों और गुणों को सत्य और स्वतंत्र पदार्थ समझ लेते हैं। यह संकीर्ण समापत्ति है, यानी अशुद्ध, अयथार्थ, मिथ्या-दर्शन है। इस सूत्र में यही मिथ्या समापत्ति बतायी गयी है।

(अगले सूत्र में निर्वितर्का समापत्ति यानी मूल तत्त्व के दर्शन का वर्णन है।)

× × ×

४३. स्मृति-परिशुद्धौ स्वरूपशून्या इव अर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

स्मृति	: स्मृति के
परिशुद्धौ	: अत्यन्त शुद्ध हो जाने पर
स्वरूप	: पदार्थों का रूप, आकृति, बाहर का स्वरूप
शून्या इव	: शून्यवत्, मानो नष्ट हो गया हो इस तरह
अर्थ-मात्र	: केवल भीतर का मूल ईश्वरीय तत्त्व
निर्भासा	: भासमान हो, तो वह
निर्वितर्का	: 'निर्वितर्क समापत्ति' कहलाती है।

यह हरि-दर्शनरूप समापत्ति है। विश्व की कोई भी चीज हरि का ही रूप है, इस प्रकार का अनुभव निर्वितर्कमा सपत्ति में आता है। और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदार्थों के बाहरी नाम-रूप-आकारात्मक स्वरूप में (जिस पर सब लोग मोहित और आसक्त रहते हैं) भी ऐसा अनुभव होता है कि यह सब शून्यवत्—मिथ्या है, यह सबीज समाधि ज्ञान-भक्ति-जन्य है।

तीसरे पाद के तीसरे सूत्र में जो सबीज समाधि बतायी है, उस सूत्र के शब्द और अर्थ इस सूत्र के शब्द और अर्थ जैसे ही हैं। तीसरे पाद की सबीज समाधि ध्यान-जन्य है। दोनों समाधियों में यह अंतर है।

(इस सूत्र में मानसिक हरि-दर्शन बताया। इसका प्रभाव आचरण पर पड़ने से जो समापत्ति प्राप्त होती है, वह अगले सूत्र में बताते हैं।)

× × ×

४४. एतया एव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

एतया एव	: इसी प्रकार से
सविचारा	: विचार-युक्त
च	: और
निर्विचारा सूक्ष्मविषया	: निर्विचार-युक्त सूक्ष्म विषयक समापत्ति का
व्याख्याता	: व्याख्यान यानी अर्थ किया जाता है।

पिछले सूत्र में वर्णित मानसिक हरिदर्शन का प्रभाव, दिव्य परिणाम आचरण पर हो, यानी भगवद्गीता में वर्णित भक्त और ज्ञानी के लक्षण व्यावहारिक जीवन में गोचर हो जायँ, तो समझना चाहिए कि आचरणात्मक सविचारा समापत्ति प्राप्त हुई। जो मानसिक हरिदर्शन हुआ, वह सच्चा था या मिथ्या, इसका निर्णय सविचारा समापत्ति में लगता है। 'सविचारा समापत्ति' का अर्थ है अत्यंत विमल विवेकदर्शन। आचरण में यही शुद्ध विवेक उपयोगी होता है। यह समापत्ति, यानी यह दर्शन सूक्ष्म है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि हरि-दर्शनरूप समापत्ति से इतना शुद्ध विवेक हस्तगत होता है कि आचरण में दिव्यता और सूक्ष्मता प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। इस दिव्य आचरण का प्रभाव समाज पर बहुत अच्छा पड़ता है। समाज के लिए यह आचरण दृष्टान्त बन जाता है और इसीसे समाज की सेवा भी हो जाती है।

यह सविचारा आचरणात्मक समापत्ति जब सहज हो जाती है, तब उसीको 'निर्विचारा समापत्ति' कहते हैं। इस निर्विचारा समापत्ति का अनुभव होने पर, उस व्यक्ति के सामने कोई सिंह आ जाय, तो भी उसे 'यह हरि का ही रूप है' इस प्रकार पहले मानसिक हरिदर्शन होता है, फिर तुरन्त आचरण में निर्भयता के रूप में वह प्रकट होता है। वह सिंह इसका शरीर खा जाय, तो भी मन में दुःख का अनुभव नहीं होगा।

(ये दोनों समापत्तियाँ मिलकर 'सबीज समाधि' कहाती हैं। इसका पर्यवसान 'निर्बीज समाधि' में होता है और यही अगले सूत्र में बता रहे हैं।)

× × ×

४५. सूक्ष्म-विषयत्वं च अलिङ्गपर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

सूक्ष्म-विषयत्वम्	: सूक्ष्म-विषयत्व का, यानी सूक्ष्म-विषयक इन दोनों समापत्तियों का
च	: भी
अलिङ्ग	: निर्गुण ब्रह्म में
पर्यवसानम्	: अन्त में लय (विलयन) होता है।

दोनों समापत्तियों का अर्थात् सबीज समाधि का अन्ततः निर्बीज समाधि में विलयन होता है। लिंग का अर्थ है, चिह्न, लक्षण। ब्रह्म अलिंग है यानी निर्गुण है। निर्गुण का अर्थ है शब्द से परे, इन्द्रियातीत, अनिर्वचनीय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यही अलिंग, मूल ब्रह्म है। माया के कारण इसी मूल ब्रह्म को सगुण ब्रह्म या 'ईश्वर' का नाम देते हैं। यही निर्गुण ब्रह्म पिण्ड में साक्षी के रूप में है, इसको 'आत्मा' कहते हैं। सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात-भूमिका में अस्मिता का परदा हटाकर यह आत्म-साक्षात्कार करने की बात कही गयी है कि 'मैं देह नहीं हूँ, साक्षी, ज्ञाता हूँ।' फिर इन विविध समापत्तियों में ब्रह्माण्डव्यापी ईश्वर के दर्शन की बात की गयी। स्पष्ट है कि इन दोनों भूमिकाओं में ईश्वर और क्षेत्रज्ञ के बीच थोड़ी-सी भेद-बुद्धि रह जाती है कि 'मैं क्षेत्रज्ञ आत्मा हूं' और 'वह ब्रह्माण्डव्यापी ईश्वर है'। भेद-बुद्धि का यह जो थोड़ा-सा बीज शेष रह जाता है, इसीके कारण इसे 'सबीज समाधि' कहते हैं, जिसका उल्लेख अगले सूत्र में किया जा रहा है। इस सूत्र में यह बता रहे हैं कि यह ईश्वर-क्षेत्रज्ञ-भेद-बुद्धि-जन्य सबीज समाधि अलिंग में यानी निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाती है। निर्गुण ब्रह्म में यानी 'निर्बीज समाधि' में ईश्वर-क्षेत्रज्ञ के बीच की भेद-बुद्धि निःशेष लीन हो जाती है। इसका स्पष्टीकरण निर्बीज समाधि-प्रकरण में करते हैं।

× × ×

४६. ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

ताः एव : उन्हीं समापत्तियों को
सबीजः : 'सबीज
समाधिः : समाधि' कहते हैं।

(यहाँ सबीज समाधि का प्रकरण समाप्त हुआ। अगले सूत्र से निर्बीज समाधि का विषय प्रारंभ हो रहा है।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४७. निर्विचार-वैशारद्ये अध्यात्म-प्रसादः ॥ ४७ ॥

निर्विचार	: निर्विचार समापत्ति में
वैशारद्ये	: विशारद या निष्णात होने से;
अध्यात्म-प्रसादः	: ईश्वर का अनुग्रह यानी कृपा होती है।

निर्बीज समाधि प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। ईश्वर के अनुग्रह के बिना निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाना (इस स्थिति में भेद रहता ही नहीं सिर्फ अद्वैत ही रहता है।) असंभव है और सबीज समाधि में पारंगत हुए बिना ईश्वर का अनुग्रह नहीं होता। इसलिए साधक को सबीज-समाधि और सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात भूमिका में प्रवीण होने का ही लक्ष्य रखना चाहिए। शेष हरि-कृपा पर छोड़ देना चाहिए।

(हरिकृपा के बाद प्रज्ञा का स्वरूप क्या होता है, यह अगले सूत्र में बताया है।)

× × ×

४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

तत्र	: तब
प्रज्ञा	: बुद्धि
ऋतम्भरा	: सत्यमय बन जाती है।

सबीज समाधि के बाद हरिकृपा से प्रज्ञा सत्यमय बन जाती है। देखना, सुनना, बोलना आदि सब सत्यमय होगा। किसी भी प्रश्न का निर्णय जो वह लेगा, सत्यमय ही होगा। उसके सामने असत्य नहीं टिकेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस पाद के २० वें सूत्र में 'समाधि' के बाद 'प्रज्ञा' कही गयी है और तीसरे पाद के ५ वें सूत्र में भी प्रज्ञा का उल्लेख है।

(इस सत्यमय प्रज्ञा का विषय अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

४९. श्रुतानुमान-प्रज्ञाभ्याम् अन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

श्रुत	: श्रवण (और)
अनुमान	: अनुमान, तर्क-वितर्क करनेवाली
प्रज्ञाभ्याम्	: प्रज्ञाओं से
अन्य-विषया	: इस सत्यमय प्रज्ञा का विषय भिन्न है।
विशेष-अर्थत्वात्	: क्योंकि यह विषय विशेष अर्थवान् है यानी अलौकिक अर्थयुक्त है।

इस सत्यमयी प्रज्ञा का विषय आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म है। यानी यह प्रज्ञा निरन्तर आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म के अनुसन्धान में ही रहती है। परमात्मा के साथ इस बुद्धि का अनुसन्धान किसी समय नहीं छूटता। अखण्ड अनुसन्धान में ही सब सात्त्विक व्यवहार चलता रहता है। जिसकी बुद्धि को परमात्मा का अनुसन्धान नहीं है, उसकी वह बुद्धि बाह्य नाम, रूप, आकृतिवान् विषयों के ही श्रवण, दर्शन, स्पर्श, तर्क-वितर्क इत्यादि में फँसी रहती है। इस सांसारिक प्रज्ञा के लिए इसके अलावा दूसरा विषय है ही नहीं। इस प्रज्ञा का विषय लौकिक है और इस सत्यमय प्रज्ञा का विषय अलौकिक है। इसलिए दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है।

(इस सत्यमय प्रज्ञा का परिणाम अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५०. तज्जः संस्कारः अन्यसंस्कार-प्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

तत्-जः	: उस सत्यमय प्रज्ञा से उत्पन्न
संस्कारः	: संस्कार
अन्य-संस्कार	: दूसरे सब संस्कारों का
प्रतिबन्धी	: प्रतिबन्ध करता है यानी हटाता है ।

प्रकाश के सामने जैसे अन्धकार रह नहीं सकता, वैसे ही इस सत्यमय प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कार के सामने अच्छे-बुरे सांसारिक संस्कार टिक नहीं सकते । यह इस प्रज्ञा का फल है ।

(यह सत्यमय प्रज्ञा-जन्य संस्कार अन्य संस्कारों को हटाकर आखिर में स्वयं भी निर्गुण ब्रह्म में विलीन हो जाता है और अगले सूत्र मे यही बताया गया है ।)

× × ×

५१. तस्यापि निरोधे सर्व-निरोधात् निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

तस्य	: इस सत्यमय प्रज्ञाजन्य संस्कार का
अपि	: भी
निरोधे	: निरोध होने पर,
सर्व-निरोधात्	: सबका निरोध हो जाने के कारण
निर्बीजः	: निर्गुण ब्रह्म में लीन होनेवाली, 'निर्बीज
समाधिः	: समाधि' प्राप्त होती है ।

'निर्बीज समाधि' का अर्थ है ब्रह्म-निर्वाण, मोक्ष । यह ज्ञान की पराकाष्ठा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, परा भक्ति है। इसके आगे कोई भूमिका प्राप्त करना शेष नहीं रहता। सबीज समाधि में 'मैं चेतन्न आत्मा हूँ' और 'वह ब्रह्माण्ड में ईश्वर है'—इस प्रकार की भेद-बुद्धि का जो थोड़ा-सा बीज रह जाता है, वह इस निर्बीज समाधि में नष्ट हो जाता है और एक ही अद्वितीय, निर्गुण, अनिर्वचनीय ब्रह्म रह जाता है। यह शून्यता की यानी ब्राह्मी स्थिति की पराकाष्ठा है। इस स्थिति की हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव तो करोड़ों में किसी एक को ही होगा। साधक को तो 'मैं देह से भिन्न हूँ, केवल अकर्ता, ज्ञाता हूँ, कर्तृत्व मेरा नहीं है'—इस प्रकार की सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात भूमिका को, और 'देह के साथ ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ हरिमय हैं', इस सबीज समाधिरूप समापत्ति या दर्शन प्राप्त करने भर का लक्ष्य रखना भी पर्याप्त है।

यह समाधि-पाद का अंतिम सूत्र है। इसलिए सार-रूप में इस पाद की थोड़ी समालोचना करना उचित होगा।

इस समाधि-पाद में चित्तवृत्तियों का निरोध और द्रष्टा की स्वरूप-स्थिति के सिद्धान्त ठीक समझाने के बाद अभ्यास-वैराग्य की साधना के द्वारा सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात भूमिका में 'मैं देह से भिन्न हूँ' इस प्रकार अपने स्वरूप को पहचानने की बात बतायी गयी। उसके बाद ईश्वर-समर्पणता के सहारे सभी अंतरायों को हटाकर ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर-तत्त्व को सबीज-समाधिरूप समापत्ति में पहचानने की बात बतायी और अंत में 'मैं ज्ञाता' और 'वह ईश्वर'—इस भेद-जन्य संस्कार को एक अद्वितीय निर्गुण ब्रह्म में लीन करके निर्बीज समाधिरूप ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करने की बात कही गयी है। ० ० ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय

साधनपाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१. क्रियायोग

२. पंचक्लेश और उनकी निवृत्ति

३. दुःखमय संसार और दुःख-त्याग

४. दृश्य और द्रष्टा का सम्बन्ध

५. अष्टाङ्ग-योग और यम-नियम-विवेचन

६. यम-नियमों का फल

७. आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का विचार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रियायोग : १ :

१. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

तपः	: तप (शारीरिक)
स्वाध्याय	: आत्मा और ईश्वरविषयक अध्ययन करना (वाचिक)
ईश्वर-प्रणिधानानि	: ईश्वर-शरणता, ईश्वर-समर्पण (मानसिक) इन तीनों का नाम
क्रिया-योगः	: 'क्रिया-योग' है ।

१. तप का अर्थ मुख्यतः कायिक तप समझना चाहिए । शंकराचार्य ने तप की बड़ी अच्छी व्याख्या की है—इन्द्रियसंयमपूर्वकं शरीरपीडनम्' । शरीर को जैसे केवल आराम से नहीं रखना है, वैसे ही अतिकृश भी नहीं बनाना है । इसलिए शरीर-पीड़ा के पीछे 'इंद्रिय-संयम-पूर्वक' विशेषण लगाया है । शरीर को कुछ कष्ट में तो रखना ही चाहिए, लेकिन इस कष्ट के पीछे विवेक और इंद्रिय-संयम रहे ।

२. स्वाध्याय का अर्थ ज्ञानेश्वर महाराज ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए 'श्रुति का यानी उपनिषद् का और ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थों का निरंतर अध्ययन' बताया है । यह स्वाध्याय 'वाणी का कर्म' समझना चाहिए ।

३. ईश्वर-प्रणिधान तो केवल मानसिक ही है ।

(अगले सूत्रों में बताया है कि यह 'क्रिया-योग' किसलिए करना चाहिए ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२. समाधि-भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

क्लेश	: (अगले सूत्र में आनेवाले) पाँच क्लेशों को
तनू-करण-अर्थः	: क्षीण करने के लिए
च	: और
समाधि-भावनार्थः	: समाधि की निष्ठा प्राप्त करने के लिए (यह क्रिया-योग है) ।

अर्थ स्पष्ट है ।

पंचक्लेश और उनकी निवृत्ति : २ :

३. अविद्याऽस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ।

अविद्या	: मूल बीजरूप अज्ञान,
अस्मिता	: अहंकार का प्रवाह,
राग	: तृष्णा पैदा करनेवाली आसक्ति-जन्य वृत्ति,
द्वेष	: क्रोध पैदा करनेवाली आसक्ति-जन्य वृत्ति,
अभिनिवेशाः	: जीवित रहने की तीव्र इच्छा, यानी जीवनमोह; (ये पाँच)
क्लेशाः	: क्लेश हैं ।

(आगे के छह सूत्रों में इन पांच क्लेशों का अर्थ एक-एक कर समझाया गया है । पहले दो सूत्रों में अविद्या का अर्थ वर्णित है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम् प्रसुप्ततनु-विच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

उत्तरेषाम्	: (पिछले सूत्र के) उत्तरार्ध में उल्लिखित (अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये चार क्लेश)
प्रसुप्त	: चाहे दबे हुए हों,
तनु	: चाहे दुर्बल हों,
विच्छिन्न	: चाहे अति क्षीण हुए हों, या
उदाराणाम्	: प्रबल हुए हों, (उनका)
क्षेत्रम्	: क्षेत्र यानी भूमि, माता अथवा बीज
अविद्या	: अज्ञान है।

'अविद्या' का अर्थ अगले सूत्र में दिया गया है। अज्ञानरूपी माता की चार सन्तान हैं—अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अथवा अविद्या बीज है, अस्मिता उसका पौधा यानी अंकुर है, राग-द्वेष उसकी शाखाएँ हैं और अभिनिवेश उस वृक्ष के बीज का तना है। अथवा अविद्या नदी का उद्गम-स्थान है, अस्मिता उस नदी का प्रचण्ड प्रवाह है, राग-द्वेष की लहरें जोर से उछल रही हैं, और उस प्रवाह में अभिनिवेशरूपी छोटे-बड़े भँवर में जीव फँसता है।

× × ×

५. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या ॥ ५ ॥

अनित्य	: क्षणभंगुर,
अशुचि	: अस्वच्छ, अपवित्र,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुःख	: दुःखात्मक, दुखःदायक,
अनात्मसु	: जड़ पदार्थों में यानी जड़ देह में
नित्य	: अविनाशी, अखण्ड,
शुचि	: पवित्र, स्वच्छ,
सुख	: आनन्द-स्वरूप
आत्म	: आत्मा का यानी चेतनता का
ख्यातिः	: आरोपण करना
अविद्या	: 'अविद्या' है, अज्ञान है।

स्पष्ट है कि देह जड़ है। मुझे उसका ज्ञान होता है। इसलिए मैं ज्ञान-स्वरूप 'ज्ञाता' हूँ। देह में प्रतिक्षण परिवर्तन की क्रिया चल रही है। आयु समाप्त होने के बाद उसे जला देना पड़ता है। इस प्रकार वह अनित्य है। यह अनुभव ही नहीं आता कि निद्रा में या जाग्रति में, कभी मेरा ('मैं' का) अभाव हुआ है। इसलिए मैं नित्य, अखण्ड और एक-रस हूँ। देह मलिन है, यह भी स्पष्ट ही है। मैं पवित्र हूँ। मैं नित्य हूँ, इसीलिए पवित्र हूँ। जिस वस्तु में परिवर्तन होता है, वह मलिन हो जाती है। जिसमें परिवर्तन होता ही नहीं, वह अत्यंत पवित्र होनी ही चाहिए। देह के कारण दुःख होता है। बिच्छू काटता है, तो पीड़ा होती है। माता-पिता का देहान्त होने पर दुःख होता है। शरीर की मृत्यु का समय आने पर भारी दुःख होने लगता है। मैं, आत्मा तो आनन्द-स्वरूप ही हूँ। क्योंकि जिस वस्तु में परिवर्तन होता नहीं जिसका कभी नाश नहीं होता, वह आनंदमय ही होनी चाहिए। इस तरह आत्मा के ज्ञाता, नित्य, पवित्र और सुखमय होते हुए भी, और देह के जड़, अपवित्र, दुःखमय और अनित्य होने पर भी अर्थात् देह और आत्मा में अन्धकार और प्रकाश जैसा, धरती-आकाश जैसा अन्तर होते हुए भी 'मैं वह हूँ'—ऐसा जो लगता है, वह भ्रान्ति-मूलक अज्ञान है। सब प्राणियों में यह अविद्या की बीजरूप रज्जुसर्पकल्पना पायी जाती है। ज्ञाता होते हुए भी "मैं देह हूँ" ऐसी भ्रान्त कल्पना हममें पैदा करने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाली वस्तु क्या है ? वह है परमेश्वर की अचिन्त्य, अलौकिक माया। उसीने हमारी यह देह पैदा की है। उसीकी इस कल्पना में फँसकर हम अपना सत्य-स्वरूप भूले हुए हैं।

(अगले सूत्र में अस्मिता का अर्थ बताया गया है।)

× × ×

६. दृग्दर्शनशक्त्योः एकात्मतेव अस्मिता ॥ ६ ॥

दृक्	: द्रष्टा, ज्ञाता, आत्मा, पुरुष (और)
दर्शन-शक्त्योः	: दर्शन-शक्ति, मन और पाँच इन्द्रियों का (इन दोनों के बिलकुल भिन्न होते हुए भी)
एकात्मता इव	: एक जैसा लगना
अस्मिता	: 'अस्मिता' है, अहंकार है।

देह दृश्य और जड़ है। 'वह मैं हूं' —ऐसी मूल-कल्पना के उत्पन्न होने के बाद उस कल्पना का जो अखण्ड प्रवाह जीवन में चलता है, यही 'अस्मिता' है। मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ—कुल ग्यारह इन्द्रियों का जो व्यवहार चलता है, उसके पीछे यह अस्मिता अखण्ड रहती है। जैसे, 'मैंने देखा, मैंने पिया, मैं विद्वान् हूँ।'—आदि व्यवहार में द्रष्टा और दर्शन-शक्ति दोनों एक-से प्रतीत होते हैं। इस अविद्या का वर्णन ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य के उपोद्घात में बहुत अच्छी तरह किया गया है।

(अगले सूत्र में राग का अर्थ बताया गया है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७. सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

सुख	: सुख देनेवाले पदार्थों में
अनुशयी	: (कामरूपी) आसक्ति
रागः	: 'राग' है।

(अगले सूत्र में द्वेष का अर्थ बताया गया है।)

× × ×

८. दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

दुःख	: दुःख देनेवाले पदार्थों में
अनुशयी	: (क्रोधरूपी) आसक्ति
द्वेषः	: 'द्वेष' है।

अस्मिता का प्रवाह जीवन के सब व्यवहारों में बहने लगता है। तब विश्व के पदार्थों में आसक्ति जम जाती है। फिर आसक्ति की दो लहरें चमकने लगती हैं—एक का नाम राग है और दूसरी का द्वेष। अनुशय यानी आसक्ति। अनुशयी यानी एकनिष्ठ। सुख देनेवाले अनुकूल पदार्थों में तृष्णा बढ़ने लगती है। उस तृष्णा या आसक्ति के साथ वृत्ति एकनिष्ठ रहती है। एकनिष्ठ यानी न छोड़नेवाली। तृष्णा को वृत्ति छोड़ती नहीं। यही 'राग' है। किसीने स्तुति की, तो वह प्रिय लगती है। फिर मन में तृष्णा पैदा होती है कि इसी तरह लोग मेरी स्तुति करते रहें। किसीने निन्दा या अपमान किया तो क्रोध पैदा होता है। उसकी आसक्ति बढ़नेपर उसका रूपान्तर मत्सर या द्वेष में होता है। हमारी वृत्ति अनुकूल पदार्थ में तृष्णासक्ति नहीं छोड़ती और प्रतिकूल पदार्थ में क्रोधासक्ति नहीं छोड़ती। यही 'राग-द्वेष' है।

(अगले सूत्र में अभिनिवेश का अर्थ बताया गया है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

९. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥

स्व-रस-वाही	: अपने स्वभाव या संस्कार के कारण सहज वहनेवाली
अभिनिवेशः	: 'जीवन-तृष्णा' यानी जीवित रहने की तीव्र इच्छा
विदुषः अपि	: विद्वान् यानी अधिकारी पुरुषों में भी
तथा	: अज्ञानी के समान
रूढः	: पायी जाती है।

'जीवन-तृष्णा' का अर्थ है शरीर के एक-एक परमाणु में पैठी हुई अस्मिता। जब अस्मिता इतनी फैल जाती है, तब सहज ही जीने की तीव्र लालसा पक्की हो जाती है। इसी कारण मृत्यु से भय लगता है। ऐसे कई उदाहरण हैं कि सिद्ध पुरुष भी मृत्यु के समय मूर्च्छित हो जाते हैं। अनेक सज्जनों ने मृत्यु तक अनशन करने का निश्चय किया, लेकिन २०-२५ दिन होते-होते अनशन तोड़ बैठते हैं।

× × ×

१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

ते	: वे
सूक्ष्माः	: (पाँच) सूक्ष्म क्लेश
प्रति-प्रसव	: मूल पर हमला करके
हेयाः	: त्यागने योग्य हैं।

इन पांच क्लेशों का एक स्वरूप स्थूल है और दूसरा सूक्ष्म है। सूक्ष्म स्वरूप पहचानना कठिन है। किसी स्त्री को देखते ही उसका आकर्षण हो जाता है। इस आकर्षण के पीछे काम-भाव निहित है। वह ध्यान में नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आता। आकर्षण के बाद मन में उसके गुणों का चिंतन शुरू हो जाता है। फिर उसके सहवास में रहने की इच्छा होती है। भले, उसकी सेवा का ही मौका मिले, पर सहवास मिले। उस अंतर्निहित कामभाव का पता तब चलता है, जब उस स्त्री के बारे में मलिन विचार शुरू हो जाते हैं। मतलब यह कि स्थूल विकारों का पता फौरन् लग जाता है, लेकिन आकर्षण के पीछे निहित सूक्ष्म विकार सहज मालूम नहीं होता। इसी प्रकार पांचों क्लेशों का सूक्ष्म स्वरूप पहचानने का अभ्यास करके उनके उद्गम-स्थान पर ही आक्रमण करके उनका त्याग करना चाहिए।

(अगले सूत्र में बताया है कि स्थूल विकारों को कैसे छोड़ा जाय।)

× × ×

११. ध्यानहेयाः तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

तत् : उन क्लेशों के
वृत्तयः : स्थूल विकार
ध्यान : चित्तवृत्ति-निरोधरूपी ध्यान से
हेयाः : छोड़े जा सकते हैं।

स्थूल विकारों को हटाने के लिए चित्तवृत्ति-निरोध-रूपी ध्यान का अभ्यास और आत्मानात्म-विवेक, चिन्तन—ये दो मुख्य उपाय हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

क्लेशमूलः	: जिसका मूल ये पाँच क्लेश हैं,
कर्माशयः	: उस कर्म के भण्डार को यानी संचित कर्म को
दृष्ट	: इस (जन्म में) और
अदृष्ट	: अगले
जन्म	: जन्म में
वेदनीयः	: भुगतना पड़ता है ।

प्रत्येक जीव के, पहले किये गये अपने कर्मों का एक भण्डार रहता है, वह 'कर्माशय' कहलाता है । इसीको संचित या अनारब्ध कर्म भी कहते हैं । इसमें से जिन कर्मों का फल भुगतने के लिए जन्म मिलता है, उनको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं । 'प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः'—प्रारब्ध कर्मों का क्षय भुगतने से ही होता है । इसलिए आत्म-साक्षात्कार होते ही देह नहीं छूटता । ज्ञानी को भी प्रारब्ध कर्म का क्षय होने तक राह देखनी पड़ती है यानी शरीर-यात्रा चलानी पड़ती है । आत्म-साक्षात्कार से संचित कर्म जल जाते हैं, इसलिए उन्हें भुगतना नहीं पड़ता । लेकिन जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ है, तब तक संचित कर्म कायम रहते हैं । अतः उनको भुगतने के लिए बार-बार जन्म लेना ही पड़ता है ।

(यही बात अगले सूत्र में बतायी जा रही है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

मूले	: पाँच क्लेशों का मूल
सति	: जब तक है, तब तक
तद्	: उसका
विपाकः	: फल
जाति	: पशु, पक्षी, मनुष्य-योनि-जन्म,
आयुः	: आयुष्य, जीवनकाल, और
भोगाः	: सुख, दुःख आदि (तीनों) भोगने होंगे।

पाँच क्लेशों का मूल यानी वासनात्मक लिंग-देह। वह जब तक आत्मज्ञान से जल नहीं जाता, तब तक जाति, आयु और भोग का जन्मचक्र चलता ही रहेगा।

(सुख-दुःख का कारण अगले सूत्र में बताया गया है।)

× × ×

१४. ते ह्लाद-परिताप-फलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

पुण्य	: अच्छे कर्म, सत्कर्म और
अपुण्य	: बुरे कर्म, पाप के
हेतुत्वात्	: कारण से
ते	: वे जाति, आयु, भोग (-रूपी जन्म)
ह्लाद	: सुख (और)
परिताप	: दुःख-रूपी
फलाः	: फल देनेवाले हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्लेशमूल कर्माशय से जन्म मिलता है। जीवन में शुभ-अशुभ कर्म किये जाते हैं और इन कर्मों से सुख-दुःख भुगतना पड़ता है। प्रत्येक जीव दुःख टालना चाहता है। सूत्रकार बता रहे हैं कि पापकर्म न करने से दुःख टलेगा, पुण्य यानी सत्कर्म करने से सुख मिलेगा। लेकिन सत्कर्म में भी जब तक आसक्ति, अस्मिता रहेगी, तब तक सुख का मर्यादित अनुभव करते हुए भी दुःख सर्वथा टल नहीं सकता। इतना ध्यान रखकर सत्कर्म करते-करते आत्मज्ञान के मुकाम पर पहुँचने की कोशिश करते रहना चाहिए।

(दुःखमय संसारचक्र का समारोप अगले सूत्र में किया गया है।)

× × ×

१५. परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैः गुण-वृत्ति-विरोधात् च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

परिणाम	: कर्म का विपरीत फल,
ताप	: दैवी प्रकोप,
संस्कार	: बुरे संस्कार (ये सब)
दुःखैः	: दुखदायी होने के कारण
च	: और
गुण	: सत्त्व, रज, तमोगुणों का
वृत्ति	: स्वभाव या स्वरूप
विरोधात्	: परस्पर विरुद्ध होने के कारण
विवेकिनः	: विवेकी पुरुष को
सर्वम्	: सारा संसार
दुःखम् एव	: दुःखमय ही लगता है।

संसार सुखमय है या दुःखमय ? निर्णय किया गया है कि संसार दुखमय है। अच्छे कर्म का भी कभी-कभी विपरीत फल मिलता है, तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुःख होता है। भूकम्प या अकाल-जैसे दैवी प्रकोप से भी दुःख होता है। कभी-कभी मन में बुरे विचार चलने लगते हैं। उनको हटा न सकने पर बहुत दुःख होता है। इसी तरह सत्त्व, रज और तमोगुणों का परस्पर संघर्ष चलता रहता है। उसमें कभी तो सत्त्व की विजय होती है, लेकिन अकसर रज और तमोगुण अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं। इससे भी काफी दुःख सहन करना पड़ता है।

(इस दुःख का त्याग करने की सूचना अगले सूत्र में की गयी है।)

× × ×

१६. हेयम् दुःखम् अनागतम् ॥ १६ ॥

अनागतम्	: भविष्य में आनेवाले
दुःखम्	: दुःख
हेयम्	: त्याग करने योग्य हैं।

भूतकाल और वर्तमानकाल में सांसारिक दुःख का जो अनुभव आया, उससे यदि मन में कुछ वैराग्य उत्पन्न होता है, तो भविष्य में आनेवाले दुःख को टाला जा सकता है।

(यह कैसे टाला जा सकता है, यह अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

१७. द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टृ	: द्रष्टा जीवात्मा का
दृश्ययोः	: दृश्य सृष्टि के साथ
संयोगः	: कर्ता, भोक्तापन का जो काल्पनिक सम्बन्ध है, वही
हेय	: नष्ट करने योग्य उस दुःख का
हेतुः	: कारण है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रष्टा जीवात्मा का दृश्य सृष्टि के साथ मन और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संबंध आता है। इसमें सृष्टि के साथ का संबंध ही दुःख का कारण नहीं है। संबंध से सृष्टि का ज्ञान होता है, लेकिन ज्ञान होने के बाद द्रष्टा मन, इन्द्रियों और शरीर के साथ एकरूप होकर अपने स्वरूप को यानी द्रष्टापन को भूलता है और अपने को ही कर्ता, भोक्ता मानने लगता है। इसीलिए दुःख का अनुभव आता है। यह दुःख त्यागना है, तो कर्ता-भोक्तापन का काल्पनिक मिथ्या संबंध छोड़ना चाहिए।

(दृश्य सृष्टि का प्रयोजन अगले सूत्र में बता रहे हैं।)

दृश्य और द्रष्टा का सम्बन्ध : ४ :

१८. प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलम् भूतेन्द्रियात्मकम् भोगापवर्गार्थम् दृश्यम् ॥ १८ ॥

प्रकाश	: सत्त्वगुण
क्रिया	: रजोगुण (और)
स्थिति-शीलम्	: तमोगुणात्मक
भूत	: पंच महाभूत (और)
इन्द्रियात्मकम्	: इन्द्रियात्मक
दृश्यम्	: दृश्य सृष्टि
भोग	: (द्रष्टा के) भोग (और)
अपवर्गार्थम्	: मोक्ष के लिए है।

इस सूत्र में दृश्य सृष्टि का उद्देश्य बताया गया है। प्रश्न उठता है कि मोक्ष के लिए सृष्टि की क्या आवश्यकता है? सृष्टि का अस्तित्व है, इसीलिए द्रष्टा उसके बन्धन में फँसता है। सृष्टि ही न हो, तो द्रष्टा किसमें फँसेगा? और, वह फँसता है, इसीलिए उसमें से निकलने का वह प्रयत्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता है, प्रयत्न करते-करते एक बार उस बन्धन से निकल जाता है। इसीका नाम मोक्ष है।

(दृश्य-सृष्टि में कुल कितने तत्त्व हैं, यह अगले सूत्र में बताया गया है।)

× × ×

१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

विशेष	: पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश–ये पाँच महाभूत, दस इन्द्रियाँ, और एक मन कुल सोलह तत्त्व,
अविशेष	: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध— ये पाँच सूक्ष्म तन्मात्राएँ और एक अहंकार—कुल छह तत्त्व,
लिङ्गमात्र	: केवल बुद्धि-तत्त्व,
अलिङ्गानि	: प्रकृति या ईश्वर की माया (कुल मिलाकर चौबीस तत्त्व हैं।)
गुणपर्वाणि	: (ये) गुणों की अवस्थाएँ (परिणाम) हैं।

चौबीस तत्त्वों से बनी यह सृष्टि है। प्रकृति से, पहले बुद्धितत्त्व, उसके बाद अहंकार, अहंकार के बाद एक ओर पाँच तन्मात्राएँ और दूसरी ओर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन–कुल ग्यारह, पाँच तन्मात्राओं से स्थूल पाँच महाभूत और इसीसे निरिन्द्रिय जड़ सृष्टि बनी है। पंचमहाभूतों की जड़देह के साथ ग्यारह इन्द्रियों का संयोग होने से सेन्द्रिय चेतन सृष्टि बनी है। यह सांख्यों द्वारा प्रतिपादित सृष्टि-क्रम है। प्रायः यही क्रम वेदान्त को भी मान्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(द्रष्टा का स्वरूप क्या है और उसका सम्बन्ध किस सृष्टि के साथ आता है, यह अगले सूत्र में बताया गया है ।)

× × ×

२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

द्रष्टा	: द्रष्टा जीवात्मा
दृशिमात्रः	: केवल साक्षी, ज्ञान-स्वरूप, ज्ञाता (और)
शुद्धः	: निर्मल, निर्विकार
अपि	: होने पर भी
प्रत्यय	: सृष्टि के प्रत्ययों को
अनुपश्यः	: देखता है, जानता है। यानी प्रत्ययों में फँस जाता है।

द्रष्टा जीवात्मा निर्मल, निर्विकार, ज्ञाता होते हुए भी सृष्टि के प्रत्यय उठते ही यानी सृष्टि का ज्ञान होते ही उसी में आसक्त होकर अपने द्रष्टापन को भूल जाता है और स्वयं कर्ता, भोक्ता बन जाता है । यही बन्धन है । यहाँ एक बात ध्यान में रखनी है कि द्रष्टा का सृष्टि के साथ सम्बन्ध प्रत्ययों के द्वारा है, प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है । द्रष्टा चेतन-स्वरूप है । सृष्टि जड़-स्वरूप है । जड़-चेतन का स्वभाव परस्पर विरुद्ध है, अतः उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध सम्भव नहीं है । प्रत्यय के द्वारा और कल्पना के द्वारा सम्बन्ध जरूर हो सकता है ।

(अठारहवें सूत्र में सृष्टि का उद्देश्य भोग और मोक्ष बताया है । अगले सूत्र में यह बता रहे हैं कि भोग-मोक्ष किसके लिए है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१. तदर्थ एव दृश्यस्य आत्मा ॥ २१ ॥

तत्	: द्रष्टा के भोग और मोक्ष
अर्थः	: के लिए
एव	: ही
दृश्यस्य	: दृश्य सृष्टि का
आत्मा	: स्वरूप है, अस्तित्व है।

दृश्य सृष्टि जड़ है। उसका अस्तित्व किसी चेतन के लिए ही हो सकता है। द्रष्टा जीवात्मा भिन्न-भिन्न पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियों में चेतन-स्वरूप दिखाई पड़ता है, अर्थात् उसीके लिए यह सृष्टि है।

(अगले सूत्र में बताया गया है कि सिद्ध पुरुष के लिए यह सृष्टि नष्ट हो जाती है, लेकिन औरों के लिए रहती है।)

× × ×

२२. कृतार्थं प्रति नष्टमपि अनष्टम् तदन्यसाधारणत्वात् ॥२२॥

कृतार्थम् प्रति	: सिद्ध पुरुष के लिए
नष्टम् अपि	: नष्ट होने पर भी (यह सृष्टि)
अनष्टम्	: (औरों के लिए) नष्ट नहीं होती, क्योंकि
तत्	: वह सृष्टि
अन्य	: औरों को
साधारणत्वात्	: उसी स्वरूप में दिखाई देती है।

सिद्ध पुरुष के लिए बाह्य सृष्टि नष्ट हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसका अस्तित्व नष्ट हो जाता है। बल्कि सिद्ध पुरुष को सृष्टि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के मूल तत्व की पहचान हो गयी है, इसलिए सृष्टि का बाह्य नाम-रूप-आकृति-जन्य स्वरूप उसके लिए मिथ्या बन जाता है। सिद्ध-पुरुष के लिए यही सृष्टि का नष्ट होना है। दूसरी भाषा में कह सकते हैं कि मन में नाम-रूपात्मक जगत् के जो प्रत्यय उठते हैं, उनके साथ द्रष्टा का सम्बन्ध छूट जाता है और वह अपने ही स्वरूप में अखण्ड रहने लगता है। इसलिए सृष्टि के होते हुए भी उस व्यक्ति के लिए वह नष्ट-सी हो जाती है। 'पंचदशी' की भाषा में ईश-सृष्टि नष्ट होती नहीं, जीव-सृष्टि नष्ट हो जाती है। और सामान्य लोग सृष्टि के अस्तित्व को सत्य समझते हैं, इसलिए उनके लिए वह नष्ट नहीं होती।

(अगले सूत्र में बताया है कि सृष्टि और जीवात्मा के अस्तित्व के ज्ञान का क्या कारण है।)

× × ×

२३. स्व-स्वामि-शक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

स्व	: प्रकृति की अपनी (विविध, और)
स्वामि	: उसके स्वामी, द्रष्टा की
शक्त्योः	: (ज्ञान) शक्तियों का
संयोगः	: संयोग यानी सम्बन्ध (ही)
स्वरूप	: दोनों के स्वरूपास्तित्व के
उपलब्धि	: ज्ञान का
हेतुः	: कारण है।

प्रकृति की एक शक्ति मन के रूप में, दूसरी इन्द्रियों के रूप में, तीसरी देह के साथ पंच-महाभूतात्मक सृष्टि के रूप में दिखाई देती है। दूसरी ओर द्रष्टा की ज्ञान-शक्ति अखण्ड प्रवाहित है। इस द्रष्टा की ज्ञान-शक्ति का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति की मनोरूपी शक्ति के साथ जब संबंध आता है, तभी मन, इन्द्रियाँ, देह और सारे विश्व के पदार्थों के अस्तित्व का और अपने अस्तित्व का भी ज्ञान हो जाता है। लेकिन द्रष्टा का सम्बन्ध यदि मन के साथ न हो, तो ज्ञान नहीं होगा। अर्थात् 'मैं द्रष्टा देह से भिन्न हूँ',—इस प्रकार का अपने भिन्न अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता है। किन्तु 'मैं देह हूँ',—इस प्रकार का केवल अपने अस्तित्व का ही ज्ञान होता है। देह से भिन्न अपने अस्तित्व का ज्ञान विवेक-ख्याति के बिना नहीं होगा।

(अगले सूत्र में मन के साथ द्रष्टा के संयोग का कारण बताया गया है।)

× × ×

२४. तस्य हेतुः अविद्या ॥ २४ ॥

तस्य : द्रष्टा और मन के संयोग का
हेतुः : कारण
अविद्या : अज्ञान है।

ईश्वर की माया के कारण 'मैं देह हूँ', यह जो मूल कल्पना खड़ी हुई है, उसीसे मन और इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है और मन के द्वारा सृष्टि के साथ संयोग होता है। दुःखोत्पति का क्रम यह है कि पहले अविद्या के कारण मन के साथ संयोग होता है, उससे सृष्टि का और अपने स्वरूपास्तित्व का ज्ञान होता है। फिर द्रष्टा का कर्ता, भोक्तापन के साथ सम्बन्ध आता है। तब संसार-दुःख का अनुभव होता है। इस संसार-दुःख के मूल में अविद्या है।

(अगले सूत्र में अविद्या-त्याग का फल बताया गया है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२५. तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

तत्	: उस अविद्या का
अभावात्	: अभाव होने से
संयोग	: मन के साथ संयोग का
अभावः	: अभाव हो जाता है और
हानं	: उसीसे संपूर्ण प्रकृति का त्याग हो जाता है।
तत्	: यही
दृशेः	: द्रष्टा (जीवात्मा) का
कैवल्यम्	: 'कैवल्य' यानी मोक्ष है।

अविद्या के नष्ट हो जाने पर द्रष्टा अपने स्वरूप में रहने लगता है। इसीसे प्रकृति के साथ संबंध छूट जाता है और इससे दुःख-निवृत्ति हो जाती है। दुःख-निवृत्ति और अपने स्वरूप में अखण्ड स्थित रहने का नाम मोक्ष है।

(अविद्या को नष्ट करने का उपाय अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

२६. विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

अविप्लवा	: अखण्ड, सतत,
विवेक	: आत्मानात्म-विवेक का
ख्यातिः	: ज्ञान, भान, जागृति
हान-उपायः	: प्रकृति से संबंध तोड़ने का उपाय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं द्रष्टा, चेतन-स्वरूप, ज्ञाता हूं, कर्ता-भोक्ता नहीं। 'देह जड़ है, मैं उससे भिन्न हूं' इस तरह के आत्मानात्म-विवेक का अभ्यास सतत करते रहना ही वह उपाय है। लेकिन चित्त-शुद्धि के बिना यह विवेक-ख्याति प्राप्त नहीं होती।

(अगले सूत्र में बताया है कि विवेक-ख्याति को प्राप्त प्रज्ञा की कितनी भूमिकाएं होती हैं।)

× × ×

२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

तस्य	: उस विवेक-ख्याति की
प्रज्ञा	: बुद्धि
सप्तधा	: सात प्रकार की
प्रान्त	: सीमावाली
भूमिः	: भूमिका तक पहुँचती है।

योगसूत्रकार ने इन सात भूमिकाओं को स्पष्ट नहीं किया है। इसलिए इसमें कल्पना से ही काम चलाना पड़ेगा! ०

अष्टाङ्ग-योग और यम-नियम-विवेचन : ५ :

२८. योगाङ्गानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

योग	: योग के
अङ्ग	: अंगों का
अनुष्ठानात्	: (भलीभाँति) अनुष्ठान करने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशुद्धि	: चित्त के मल
क्षये	: धुल जाने से, क्षय होने से
आ-विवेक-ख्यातेः	: विवेक-ख्याति तक
ज्ञान	: ज्ञान की
दीप्तिः	: वृद्धि होती है या ज्ञान का प्रकाश होता है।

योग के अंगों का अनुष्ठान चित्त-शुद्धि के लिए है—यह ध्यान में रखना चाहिए। चित्त-शुद्धि के बाद ही आत्म-ज्ञान का प्रकाश होना संभव है। इस प्रकाश से विवेक-ख्याति पैदा होती है। शंकराचार्य ने गीता-भाष्य के उपोद्घात में यही क्रम बताया है: १. ईश्वरार्पण-बुद्धि से फलाशा-त्यागपूर्वक सत्कर्म करते रहने से चित्त-शुद्धि, २. चित्त-शुद्धि के बाद ज्ञान-निष्ठा-योग्यता-प्राप्ति, ३. उसके बाद ज्ञानोत्पत्ति और ४. ज्ञान से मोक्ष।

(अगले सूत्र में योगांगों का वर्णन है।)

× × ×

२९. यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः अष्टौ अङ्गानि ॥ २९ ॥

यम	: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,
नियम	: शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान,
आसन	: सुखासन,
प्राणायाम	: प्राण का द्वार बन्द करना,
प्रत्याहार	: इन्द्रियों का द्वार बन्द करना,
धारणा	: मन का द्वार बन्द करना,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान : आत्म-प्रत्यय की सतत धारा,
समाधयः : आत्मा में इतना लीन हो जाना कि देह का भान ही न रहे,
अष्टौ : ये आठ
अङ्गानि : (योग के) अंग हैं।

इस अष्टांगयोग को 'ध्यानमार्ग' कहते हैं। यही ध्यानयोग गीता के आठवें अध्याय में वर्णित है।

(इस पाद के अन्त तक इन आठ अंगों में से पांच अंगों का स्पष्टीकरण और उनका फल वर्णित है।)

× × ×

३०. अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥ ३० ॥

अहिंसा : कायां, वाचा और मन से किसीको दुःख न देना,
सत्य : कायां, वाचा और मन से केवल सत्य का ही आचरण
अस्तेय : कायां, वाचा और मन से समाज की सेवा किये बिना जीवन न बिताना
ब्रह्मचर्य : कायां, वाचा और मन से स्थूल-सूक्ष्म निर्विकारता,
अपरिग्रहाः : आवश्यकता से ज्यादा किसी भी वस्तु का परिग्रह न रखना (ये पाँच व्रत)
यमाः : 'यम' कहलाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन पाँच व्रतों के विषय में गांधीजी ने 'मंगल प्रभात' * नामक पुस्तक में बहुत अच्छा विवेचन किया है। ये पाँच व्रत ध्यान-मार्ग के आधार हैं। इनकी ठीक-ठीक साधना किये बिना इस मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकते।

(यम का व्यापक रूप अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

३१. जाति-देश-काल-समयावच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

जाति	: ब्राह्मणादि विशिष्ट जाति
देश	: तीर्थक्षेत्रादि विशिष्ट देश
काल	: कृष्णाष्टमी, रामनवमी आदि विशिष्ट दिन (और)
समय	: युद्ध आदि विशिष्ट प्रसंगों से
अनवच्छिन्नाः	: अमर्यादित, असीमित, अनपवादित
सार्वभौमाः	: विश्वव्यापक
महाव्रतम्	: ये महाव्रत हैं।

इन पाँच व्रतों के लिए कोई विशेष जाति, विशेष देश, विशेष दिन, विशेष प्रसंग अपवाद नहीं है। 'ब्राह्मणों को अस्तेय-व्रत की यानी परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं है', 'तीर्थक्षेत्र में ब्रह्मचर्य-व्रत का भंग करने में हर्ज नहीं है', 'युद्ध-प्रसंगों पर हिंसा कर सकते हैं'—इस प्रकार के अपवाद बिलकुल नहीं कर सकते।

(अगले सूत्र में पाँच नियमों का वर्णन है।)

× × ×

---

* पू. गांधी जी के 'मंगल प्रभात' का मराठी में पद्यानुवाद पू. विनोबा जी ने बहुत अच्छे ढंग से किया है। उसका हिन्दी में विवेचन मैंने भी किया है। वह 'अभंग व्रत विवेचन' नाम से ४०० पृष्ठों का ग्रंथ प्रसिद्ध हो चुका है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२. शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

शौच	: शारीरिक और मानसिक निर्मलता, शुचिता
सन्तोष	: किसी भी परिस्थिति में प्रसन्नता न खोना,
तपः	: इन्द्रिय-संयम-पूर्वक शरीर को थोड़े कष्ट में रखना,
स्वाध्याय	: आत्मा (ईश्वर) की प्राप्ति के लिए गीता, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन, चिंतन, मनन
ईश्वर-प्रणिधानानि	: काया, वाचा और मन से समस्त क्रियाएँ ईश्वर को समर्पण करना, उसकी शरण जाना (इन पाँचों को)
नियमाः	: 'नियम' कहते हैं।

अर्थ स्पष्ट है।

(अगले सूत्र में यम और नियमों का पालन करने में आनेवाली बाधाओं को हटाने का उपाय बताया गया है।)

× × ×

३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

वितर्क	: यम-नियमों के विरोधी तर्क के कारण विपरीत आचरण-रूपी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाधने : प्रतिबन्ध खड़ा होता है, तो
प्रतिपक्ष : उनके विरुद्ध, प्रतिपक्ष
भावनम् : भावना करनी चाहिए।

यम और नियमों का अनुष्ठान करते समय मन में अनेक वितर्क खड़े होते हैं, जैसे—'यहाँ हिंसा करने में कोई दोष नहीं है', 'इस प्रसंग में झूठ बोलना पाप नहीं है', 'इस स्थान में ब्रह्मचर्य का भंग करने में कोई हर्ज नहीं है', 'हिंसा किये बिना और झूठ बोले बिना व्यवहार ही नहीं चल सकता', 'सभी ब्रह्मचारी रहने लगें, तो सृष्टि-चक्र कैसे चलेगा?' आदि। यह व्रतपालन में बाधक है। इस वितर्क को हटाने के लिए प्रतिपक्ष-भावना करनी चाहिए।

(वितर्क और प्रतिपक्ष-भावना का अर्थ अगले सूत्र में स्पष्ट किया गया है।)

× × ×

३४. वितर्काः हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिताः लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वकाः मृदु-मध्याधिमात्राः दुःखाज्ञाना-नन्तफलाः इति प्रतिपक्ष-भावनम् ॥ ३४ ॥

हिंसादयः : हिंसा, असत्य आदि
वितर्काः : विपरीत तर्क, विरुद्ध कल्पनाएँ
कृत : चाहे स्वयं की गयी हों,
कारित : चाहे दूसरों से करवायी गयी हों,
अनुमोदिताः : चाहे अपने द्वारा अनुमोदित हों,
लोभ : चाहे लोभवश
क्रोध : या क्रोधवश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोह-पूर्वकाः	: या मोहवश की गयी हों,
मृदु	: चाहे कम मात्रा में,
मध्य	: या मध्यम मात्रा में
अधिमात्राः	: या अधिक मात्रा में पैदा हुई हों,
	ये कल्पनाएँ
दुःख	: दुःख
अज्ञान	: अज्ञान (आदि)
अनन्त	: अनन्त, अनेक प्रकार के
फलाः	: फल देनेवाली हैं।
इति	: इस प्रकार का चिंतन
प्रतिपक्ष-भावनम्	: 'प्रतिपक्ष-भावना' कहलाता है।

झूठी, असत् (बुरी) कल्पनाओं और विचारों को सच्ची, सत् (अच्छी) कल्पनाओं और विचारों से हटा देना 'प्रतिपक्ष-भावना' है। हिंसा, असत्याचरण और अब्रह्मचर्य इत्यादि से दुःख ही होता है, यह तो सहज ही ध्यान में आ जाता है; और, हरएक को सुख चाहिए, कोई दुःख नहीं चाहता, यह भी ध्यान में आता है। इसलिए वितर्क यानी झूठी कल्पनाएँ कष्टदायक हैं, ऐसा बार-बार सोचने से वे मन से निकल सकती हैं। प्रथम पाद के सूत्र सं० ३३ में मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावना करने की बात कही गयी है। वह भी प्रतिपक्ष-भावना ही है। ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३५. अहिंसा-प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर-त्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसा	: काया, वाचा और मन से अहिंसा के पालन में
प्रतिष्ठायाम्	: स्थिर या सफल होने पर
तत्-सन्निधौ	: उसके आसपास
वैर-त्यागः	: वैर, द्वेष, हिंसा का त्याग होता है।

ज्ञानेश्वर महाराज ने गीता के १३वें अध्याय के ७वें श्लोक के भाष्य में 'अहिंसा' की विस्तृत व्याख्या की है। वह देखने जैसी है। जिस पुरुष के आचरण में अहिंसा उस हद तक प्रकट होगी, उसके सामने हिंसा, वैर और द्वेष टिक ही नहीं सकेंगे। इसके लिए कुछ अंश में गांधीजी का उदाहरण ले सकते हैं। प्राचीन काल के संतों के उदाहरण तो हैं ही। उन संतों के बारे में कहा गया है कि उनके पास सिंह, सर्प आदि हिंसक जन्तु अपनी हिंसक वृत्ति सर्वथा भूल जाते थे। प्रस्तुत सूत्र में परिपूर्ण अहिंसा का फल बताया है। फल-निर्देश करने का अर्थ यह नहीं कि अमुक फल की प्राप्ति के हेतु से अमुक व्रत की साधना की जाय। पाँचों व्रतों की साधना आत्मप्राप्ति के लिए ही है, यह लक्ष्य सर्वदा स्पष्ट रहना चाहिए।

× × ×

३६. सत्य-प्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्य	: काया, वाचा और मन से सत्य के पालन में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठायाम्　　: स्थिर होने पर यानी सफल होने पर
क्रिया-फल　　: सत्कर्म का फल
आश्रयत्वम्　　: संकल्प के अनुसार मिलता है।

इसके लिए गांधीजी का उदाहरण कुछ अंश में ले ही सकते हैं। जीवन में सत्य का पालन भलीभांति करने के फलस्वरूप देश के जीवन में वे जो बात दाखिल करते थे, उसका फल कुछ अंश में उनके संकल्पानुसार मिल ही जाता था। जो लोग पहले चरखे का मजाक उड़ाते थे, उपेक्षा करते थे या उसके विषय में तटस्थ रहते थे, वे धीरे-धीरे बापू के समर्थक बन गये। अहिंसा सार्वत्रिक न हो सकी, फिर भी उसे अनेक लोगों ने स्वीकार किया।

× × ×

३७. अस्तेय-प्रतिष्ठायाम् सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

अस्तेय　　: काया, वाचा और मन से अस्तेय के पालन में
प्रतिष्ठायाम्　　: स्थिर या सफल होने पर
सर्व　　: (आवश्यकताभर) सब
रत्न　　: धन या साधन
उपस्थानम्　　: प्राप्त हो जाता है।

इसके लिए गांधीजी का उदाहरण पूर्णतया ले सकेंगे। जीवन की सब क्रियाएँ सेवामय हो जाने से उनको धन की या अन्य साधनों की कमी कभी महसूस नहीं हुई। चारित्र्यवान्, निग्रही और संयमी कार्यकर्ताओं की कमी तो वे जरूर महसूस करते रहते थे। साधक को समाज की सेवा किये बिना न खाने का यह जो अस्तेय व्रत है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८. ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायाम् वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य	: काया, वाचा और मन से ब्रह्मचर्य के पालन में
प्रतिष्ठायाम्	: स्थिर या सफल होने पर
वीर्य-लाभः	: वीर्य-संग्रह का लाभ मिल जाता है।

यहाँ भी गांधीजी का उदाहरण प्रत्यक्ष है। उनको जो अखण्ड हरि-स्मरण रहता था, वह ब्रह्मचर्य के सूक्ष्म पालन के बिना असम्भव होता। काया, वाचा और मन से यदि स्त्री-जाति के प्रति पूर्ण निर्विकारता प्राप्त हो जाती है, तो स्वप्न में भी वीर्यपात नहीं होना चाहिए। ऐसे वीर्य-संग्रह से इतना बल पैदा होता है कि उसके सहारे जीवात्मा अपने स्वरूपानुसन्धान में रह सकेगा। दीपक में तेल का जो स्थान है, वही स्थान जीवन में ब्रह्मचर्य का है। बुद्धिरूपी वत्ती को ब्रह्मचर्यरूपी तेल ठीक से मिलता रहे, तभी आत्मज्ञानरूपी प्रकाश मिल सकता है।

× × ×

३९. अपरिग्रह-स्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९ ॥

अपरिग्रह	: काया, वाचा और मन से अपरिग्रह के पालन में
स्थैर्ये	: स्थिर होने पर या सफल होने पर
जन्म	: जन्म के
कथन्ता	: स्वरूप का
सम्बोधः	: ज्ञान होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपरिग्रह का व्यापक अर्थ लेना चाहिए। अनावश्यक शब्द न बोलना, अनावश्यक ज्ञान ग्रहण न करना आदि का भी इसमें समावेश है। इस तरह काया, वाचा और मन से अपरिग्रह सिद्ध होता है, तो 'देह, इन्द्रिय और मन भी परिग्रह हैं, इनकी आसक्ति रखो, तभी तो जन्म मिला है और आगे भी मिलनेवाला है, इसलिए इस परिग्रह को भी छोड़ना चाहिए'—ऐसा बोध सहज ही मिलता है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए यह बोध आवश्यक है।

(यहां तक पांच यमों का फल बताया गया, अब अगले सूत्रों में नियमों का फल बता रहे हैं।)

× × ×

४०. शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैः असंसर्गः ॥ ४० ॥

शौचात्	: अन्तर्बाह्य शुद्धि से, शुचिता से
स्वाङ्ग	: अपने शरीर के अंगों की
जुगुप्सा	: घृणा पैदा होती है, (और)
परैः	: दूसरों को
असंसर्गः	: स्पर्श करने की इच्छा नहीं रहेगी।

आचरण में पूर्णतया अन्तर्बाह्य शुद्धि हो जाने से शरीर का वास्तविक रूप ध्यान में आ जाता है। इसीसे यह विचार मन में स्थिर हो जाता है कि पुरुष-शरीर और स्त्री-शरीर में कोई अन्तर नहीं है। यानी शरीर की मलिनता के बारे में मन निःशंक हो जाता है। तब स्त्री-पुरुष-शरीर को देखने से मानसिक विकार पैदा नहीं होगा। फिर परस्पर स्पर्श करने की इच्छा तो होगी ही नहीं। पुरुष पुरुष-देह का और स्त्री स्त्री-देह का भी अनावश्यक स्पर्श नहीं चाहेंगे। ब्रह्मचर्य की साधना में यह शरीर-जुगुप्सा यानी घृणा बहुत लाभदायक है।

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४१. सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

च	: और
सत्त्व-शुद्धि	: चित्त-शुद्धि,
सौमनस्य	: सुप्रसन्नता,
ऐकाग्र्य	: एकाग्रता
इन्द्रिय-जय	: इन्द्रियों पर विजय पाना
आत्म-दर्शन	: आत्म-साक्षात्कार की
योग्यत्वानि	: योग्यता (ये पाँच शुद्धि की साधना के फल हैं।)

अन्तर्बाह्य-शुद्धि का यह मानसिक फल है। सब प्रकार की चित्त-शुद्धि, राग-द्वेष का वेग कम हो जाने से सुप्रसन्नता, मन की मलिनता का क्षय होने से एकाग्रता यानी चांचल्य का अभाव, इन्द्रियों पर विजय-प्राप्ति और इन चारों की प्राप्ति से ही आत्मदर्शन की योग्यता प्राप्त करनी है। चित्त-शुद्धि का यह अंतिम फल इस सूत्र में बताया गया है।

× × ×

४२. सन्तोषात् अनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

सन्तोषात्	: किसी भी परिस्थिति में सन्तोष रखने के अभ्यास से
अनुत्तमः	: अतिश्रेष्ठ
सुख-लाभः	: सुख का लाभ होता है।

तुलसीदासजी ने नौ प्रकार की भक्ति में आठवें प्रकार की भक्ति बतायी है 'आठवँ जथालाभ संतोषा'। गीता में 'यदृच्छालाभसन्तुष्टः' बताया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो भी परिस्थिति आ जाय, जो कुछ मिल जाय, उसमें संतोष को कायम रखने में सफल हो जाने पर श्रेष्ठ सुख का अनुभव आना ही चाहिए।

इस सुख को अति श्रेष्ठ कहा, क्योंकि यह सुख परिस्थिति-निरपेक्ष है। परिस्थिति-सापेक्ष-सुख मर्यादित रहता है; परिस्थिति-निरपेक्ष-सुख अमर्यादित।

× × ×

४३. कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धि-क्षयात् तपसः ॥ ४३ ॥

तपसः : इन्द्रिय-संयमपूर्वक शरीर को कुछ कष्ट में रखने के कारण

अशुद्धि-क्षयात् : रजोगुण और तमोगुण का क्षय हो जाने से

काय-इन्द्रिय : देह और दस इन्द्रियों का

सिद्धिः : संयम, निग्रह सध जाता है।

इंद्रिय-संयम-पूर्वक शरीर को यथाशक्ति परिश्रम में रखा जाय, तो रजोगुण और तमोगुण के वेग का क्षय होता है और शरीर और इंद्रियों में निग्रह यानी संयम-शक्ति पैदा होती है। उससे शरीर नीरोग होता है और इंद्रियाँ वश में होती हैं।

× × ×

४४. स्वाध्यायात् इष्ट-देवता-सम्प्रयोगः ॥ ४४ ॥

स्वाध्यायात् : आत्मा और ईश्वर की प्राप्ति के लिए गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थों के अध्ययन, चिंतन, मनन से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इष्ट	: इच्छित
देवता	: ध्येय की
सम्प्रयोगः	: प्राप्ति होती है।

गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन भाषा सीखने की दृष्टि से किया जाय, तो भाषा का ज्ञान प्राप्त होता है तथा आत्मा और ईश्वर की प्राप्ति की दृष्टि से किया जाय, तो आत्मा और ईश्वर प्राप्त होता है। जो ध्येय सामने रखकर अध्ययन करते हैं, उस ध्येय की प्राप्ति अवश्य होनेवाली है—ऐसा सूत्रकार का कथन है। नित्य कुछ समय स्वाध्याय करना चाहिए। भोजन के तुरन्त बाद आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना कठिन है। प्रातःकाल का समय या स्नान के बाद का समय अनुकूल रहता है।

× × ×

४५. समाधि-सिद्धिः ईश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वर	: परमेश्वर की
प्रणिधानात्	: शरण जाने से, समस्त क्रियाएँ और जीवन ईश्वर को समर्पण करने से, हरिमयता से,
समाधि	: (आत्मा की) समाधि
सिद्धिः	: प्राप्त होती है।

ईश्वर-शरणता का कितना बड़ा फल सूत्रकार ने बतलाया है ! सच्ची शरणता, समर्पणता या हरिमयता से समाधि अवश्य प्राप्त हो सकती है। तुलसीदासजी ने नारदजी की कथा में लिखा है—

'सुमिरत हरिहिं सांस गति बाधी,
सहज विमल मन लागि समाधी।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरि का स्मरण करते ही सांस की गति शांत हो गयी और मन सहज ही अति शुद्ध होने से समाधि लग गयी। रामकृष्ण परमहंस की भी यही स्थिति हो जाती थी। गीता में इसी साधन को प्रमुख बताया गया है। जिनकी वृत्ति भावना-प्रधान है, उनको यह साधन बहुत अनुकूल होता है। अलौकिक साधन होने पर भी सुलभता इसकी विशेषता है। ०

आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का विचार : ७ :

४६. स्थिरसुखम् आसनम् ॥ ४६ ॥

स्थिर	: स्थिरता से दीर्घकाल तक
सुखम्	: आराम से जिस स्थिति में बैठा जा सके, उसका नाम
आसनम्	: 'आसन' है।

(अब तक पांच यम और पांच नियम का विवेचन किया गया और बताया गया कि उनके भलीभांति अनुष्ठान से क्या-क्या फल मिलते हैं। अन्त में समाधि का विचार आया, जिसमें मनुष्य सर्वथा देह-भान भूलकर आत्मलीन होता है। उसके उपायभूत ध्यानमार्ग की पूर्व-सिद्धता के वर्णन के बाद अब आसनों का विवेचन इस सूत्र में किया जा रहा है।)

आसन तो अनेक प्रकार के हैं। कई तो शारीरिक व्यायाम के लिए हैं। लेकिन यहां विवक्षित आसन ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसके कारण ध्यान करते-करते देह की तरफ ध्यान चला जाय यानी वह आसन देह का भान करानेवाला और दुःख देनेवाला नहीं होना चाहिए। ऐसा सुखासन होना चाहिए कि जिस पर बैठकर घंटों ध्यान किया जा सके। (यहां गीता के छठे अध्याय के ११वें श्लोक को देखना चाहिए) जहां बैठना हो,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह स्थान स्वच्छ होना चाहिए। एकांत होना चाहिए। आसन अधिक ऊँचा या अधिक नीचा न हो, इसलिए जमीन पर दर्भ आदि बिछाना चाहिए। मोटा कम्बल भी बिछा सकते हैं। उस पर एक शुभ्र वस्त्र बिछा लेना चाहिए। आसन इतना ऊँचा होना चाहिए कि चींटियाँ उस पर न चढ़ पायें। लेकिन बहुत ऊँचा हो जाय, तो गिरने का भय रहेगा। इसलिए अधिक ऊँचा भी नहीं होना चाहिए।

(अगले सूत्र में बताया जा रहा है कि आसन पर स्थिरता से बैठने के लिए क्या करना चाहिए।)

× × ×

४७. प्रयत्न-शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

प्रयत्न	: आसन पर स्थिरता से बैठने के अभ्यास से (जो)
शैथिल्य	: सहजता आती है यानी दीर्घ काल तक बैठे रहने में कष्ट अनुभव नहीं होता, उससे (और)
अनन्त	: अनन्त सृष्टि का या उसमें स्थित ईश्वर का
समापत्तिभ्याम्	: दर्शन, चिन्तन करने से अर्थात् इन दो उपायों से आसन सिद्ध होता है।

आसन पर स्थिरता से बैठने का कुछ काल तक अभ्यास करना पड़ता है। इस सूत्र में इसका उपाय बताया गया है। एकांत स्थान रमणीय हो तो बहुत अच्छा। (इसका वर्णन ज्ञानेश्वर महाराज ने किया है, वह देख जाना चाहिए।) विविध वृक्ष, विभिन्न पक्षी, हरे-भरे पर्वत, रमणीय नदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि को देखकर उसीके चिंतन में दर्शन में ध्यान लगाना चाहिए। ईश्वर-तत्त्व स्वीकार किया हो, तो निसर्ग देखकर ईश्वर का स्मरण करके उसी भाव में लीन होने का प्रयत्न करना चाहिए। इसमें हेतु तो दीर्घकाल तक बैठने का अभ्यास ही है, ध्यान नहीं, लेकिन चूंकि चिंतन और ध्यान में चित्त लीन हो जाता है, इसलिए एक ही स्थिति में बैठे रहने पर भी मनुष्य ऊबता नहीं और एक ही आसन पर एक ही स्थिति में बैठने का अभ्यास हो जाता है। शरीर किस स्थिति में रखा जाय, इस बारे में इस सूत्र में या अगले सूत्र में नहीं बताया गया है। (इसके लिए गीता के छठे अध्याय का १३ वां श्लोक द्रष्टव्य है।) पीठ का मेरुदण्ड बिलकुल सीधा रहना चाहिए—यही एक प्रमुख बात ध्यान में रखनी है। विशेष आसन पर बैठकर ही क्यों ध्यान करना चाहिए, खड़े होकर क्यों नहीं—इसके बारे में ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य के चतुर्थ अध्याय के प्रथमपाद के छठे अधिकरण के सूत्र-संख्या ७ से १० द्रष्टव्य हैं। सातवां सूत्र है: 'आसीनः सम्भवात्'। उसमें बताया गया है कि दौड़ते-दौड़ते या चलते-चलते ध्यान किया नहीं जा सकता, क्योंकि दौड़ने या चलने में चित्त स्थिर नहीं रह सकता। खड़े होकर ध्यान करने में चित्त की थोड़ी शक्ति खड़े होने में ही लग जाने से आत्मा-जैसी सूक्ष्म वस्तु का निरीक्षण करने में चित्त समर्थ नहीं रह जाता। लेटने में सो जाने का भय है। बैठने पर ये सब दोष टाले जा सकेंगे। इसलिए बैठकर ही ध्यान करना चाहिए।

(अगले सूत्र में आसन सिद्ध होने पर प्राप्त होनेवाले फल का वर्णन है।)

× × ×

४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

ततः : उसके बाद यानी आसन सिद्ध होने के बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वन्द्व : शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों का
अनभिघातः : प्रहार नहीं होता, यानी वे नहीं सताते।

देह का भान बिलकुल भुलानेवाली आत्मलीनता की समाधि प्राप्त करने के लिए आसन सिद्ध करने का सहज परिणाम यह है कि उतनी देर तक हम एक आसन पर बैठे रहें और उतने समय तक बाह्य वातावरण में शीत या उष्णता का खूब जोर बढ़ने पर भी शरीर पर उनका जरा भी परिणाम न हो। शरीर लकड़ी की तरह, खंभे की तरह अविचलित रहे। समाधि के लिए आसन में इतनी स्थिरता आनी ही चाहिए।

(अगले सूत्र में आसन स्थिर करने के बाद प्राण को स्थिर करने की बात है।)

× × ×

४९. तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गति-विच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

तस्मिन् : आसन के
सति : स्थिर होने पर
श्वास-प्रश्वासयोः : श्वास और उच्छ्वास की
गति : गति को
विच्छेदः : समान करना, शांत करना
प्राणायामः : 'प्राणायाम' है।

श्वास और उच्छ्वास का मन के साथ संबंध है। मन अत्यन्त एकाग्र हो जाय, तो श्वासोच्छ्वास की गति शांत और समान हो जाती है। तुलसीदासजी ने लिखा है :

'सुमिरत हरिहि साँस गति बाधी।'

—हरि का स्मरण करते ही साँस की गति शांत हो गयी। मन जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामवश, क्रोधवश या चंचल बन जाता है, तब साँस जोर से, असमान गति से चलने लगती है। यह हर एक का अनुभव है। इसलिए चित्त का चांचल्य और मलिनता दूर करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास बताया गया है।

(यह अभ्यास किस प्रकार से किया जाता है, इसका वर्णन अगले दो सूत्रों में है।)

× × ×

५०. बाह्याभ्यन्तर-स्तम्भ-वृत्तिः देश-काल-संख्याभिः परिदृष्टः दीर्घ-सूक्ष्मः ॥ ५० ॥

बाह्य	: बाह्य वृत्ति, रेचक
आभ्यन्तर	: आन्तरवृत्ति, पूरक (इन दोनों को)
स्तम्भ-वृत्तिः	: रोकना, कुम्भक (इस तरह का तीन प्रकार का प्राणायाम)
देश	: हृदय या मस्तक में
काल	: अमुक समय तक
संख्याभिः	: अमुक मात्रा में
दीर्घ-सूक्ष्मः	: दीर्घ और सूक्ष्म प्रकार से करना
परिदृष्टः	: निश्चित किया हुआ है।

प्राणायाम अनुभव का विषय है। मुझे इसके बारे में शास्त्रीय अनुभव नहीं है। इसलिए इसका स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। इतना देख सकता हूँ कि यह प्राणायाम व्यायाम की दृष्टि से भी किया जाता है। यहाँ तो समाधि प्राप्त करने की दृष्टि से ही प्राणायाम बताया गया है। उसको ख्याल में रखकर ही प्राणायाम करना चाहिए। यह क्रिया किसी अनुभवी सज्जन के मार्ग-दर्शन में ही करनी चाहिए।

(अगले सूत्र में चौथे प्राणायाम—केवल कुम्भक—का वर्णन है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५१. बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

बाह्य	: रेचक और
आभ्यन्तर	: पूरक
विषय	: विषयक जो प्राणायाम है,
आक्षेपी	: उसके परे
चतुर्थः	: चौथा प्राणायाम है (जो 'केवल कुंभक' कहलाता है) ।

'केवल कुम्भक' प्राणायाम को चौथा प्राणायाम माना गया है। आक्षेपी का अर्थ है अतिक्रमण करनेवाला ।

(अगले दो सूत्रों में प्राणायाम का फल बताया गया है ।)

× × ×

५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

ततः	: प्राणायाम सिद्ध होने के बाद
प्रकाश	: आत्मज्ञानरूपी प्रकाश का
आवरणम्	: आवरण यानी प्रतिबन्ध
क्षीयते	: क्षीण होता है ।

प्राणायाम सिद्ध हो जाने से चित्त का चांचल्य और जड़ता यानी रजोगुण और तमोगुण क्षीण होता है और वृत्ति सत्त्वस्थ हो जाती है। गीता में लिखा है : 'सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्' (अ० १४, श्लोक १७) रजोगुण और तमोगुण का आवरण क्षीण होकर जब वृत्ति सत्त्वस्थ हो जाती है, तब धीरे-धीरे ज्ञानरूपी प्रकाश मिलता है। प्राणायाम का मुख्य फल 'वृत्ति की चंचलता को दूर करना' ही है ।

(अगले सूत्र में दूसरा फल बताया है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

५३. धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

च	: और
धारणासु	: चित्त को एक दिशा में बाँधने या चित्त के विचारों को चारों दिशाओं से रोकने के लिए
मनसः	: मन की
योग्यता	: योग्यता या अधिकार प्राप्त होना (प्राणायाम का दूसरा फल है)।

अगले पाद के प्रथम सूत्र में धारणा की व्याख्या बतायी गयी है। प्राणायाम से चित्त की चंचलता दूर होने से केवल एक दिशा में यानी एक ही विषय में अर्थात् आत्मचिन्तन, हरिचिन्तन-रूप विषय में घंटों तक चित्त को तल्लीन करने की योग्यता प्राप्त होती है। चारों दिशाओं से घेरनेवाले विचारों को रोकने की शक्ति मिल जाती है। प्राणायाम का यह फल तभी मिल सकता है, जब सब कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धि से किये जाते हैं। लेकिन यहां ध्यान-जन्य समाधि प्राप्त करने की दृष्टि से ध्यान-मार्ग पर प्रवास चल रहा है, इसलिए प्राणायाम का भलीभांति अभ्यास करके ही आगे चलना है।

शरीर के तीन द्वार हैं—प्राण, इन्द्रियां और मन। प्राणायाम से प्राण के द्वार बन्द होते हैं। इंद्रियों का द्वार बन्द करने का नाम 'प्रत्याहार' है। (अगले सूत्र में प्रत्याहार का वर्णन है।)

× × ×

५४. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

स्व	: (इन्द्रियों का) अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय	: विषयों के साथ
असम्प्रयोगे	: सम्बन्ध छूट जाने पर
चित्त-स्वरूप	: चित्त के स्वरूप में
अनुकारः इव	: मानो (इन्द्रियों के अपने स्वरूप का) विलीन हो जाना, खो जाना
इन्द्रियाणाम्	: इन्द्रियों का
प्रत्याहारः	: 'प्रत्याहार' है।

प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार का अभ्यास आता है। देखते हुए न देखना, सुनते हुए न सुनना, शीत-उष्ण का स्पर्श होते हुए भी मालूम न होना—इस प्रकार इन्द्रियों का विषयों से संबंध तोड़ने का अभ्यास 'प्रत्याहार' कहलाता है। यह अभ्यास सफल हो जाने से इन्द्रियों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होते हुए भी और उस अस्तित्व के कायम रहते हुए भी प्रत्याहार के समय इन्द्रियों का देखने, सुनने, सूँघने, स्पर्श करने आदि का स्वरूप मन में ही खो जाता है। इन्द्रियाँ मन के सदृश बन जाती हैं। ध्यान-जन्य समाधि के लिए इन्द्रियों के विषयों से सम्बन्ध तोड़ने का अभ्यास आवश्यक है। केवल ध्यान का अभ्यास करने के लिए या हरिमयता की समाधि के लिए इन्द्रिय-निग्रह पर्याप्त है, इन्द्रियों का द्वार बन्द कर देना 'प्रत्याहार' है।

(अगले सूत्र में प्रत्याहार का फल बताया गया है।)

५५. ततः परमा वश्यता इन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

ततः	: प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने से
इन्द्रियाणाम्	: इन्द्रियों की
परमा वश्यता	: परम स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्याहार के सफल होने से इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। देखना, सुनना आदि चाहे जब रोक सकते हैं। प्रत्याहार का यह फल ईश्वर-प्रणिधान से भी मिल सकता है।

अष्टांगयोग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—इन पाँच बाह्य अंगों का स्पष्टीकरण इस पाद में किया गया है। अगले पाद में धारणा, ध्यान और समाधि—इन तीन आंतरिक अंगों का विवेचन है। यहाँ पर दूसरा पाद समाप्त हुआ। इसलिए साररूप में इस पादकी समालोचना करना उचित होगा।

इस पाद में पहले पंच-क्लेश-रूपी संसार-बीज को क्षीण करने की दृष्टि से क्रियायोग को अमल में लाने का विचार हुआ। फिर पंच-क्लेशों का स्वरूप और क्लेशमूलक दुःखमय संसार की गति का विवेचन हुआ। अंत में दुःख के कारण का शोधन करते हुए यह निर्धारित किया कि द्रष्टा आत्मा का दृश्य सृष्टि के साथ कर्ता-भोक्तापन के सम्बन्ध के कारण ही दुःख होता है।

उसके बाद दृश्य सृष्टि के चौबीस तत्त्वों का वर्णन आया और यह कहा गया कि दृश्य सृष्टि द्रष्टा के भोग और मोक्ष के लिए है। कृतार्थ पुरुष के लिए तो यह सृष्टि नष्टवत् हो जाती है। द्रष्टा और दृश्य के संयोग से दृश्य और द्रष्टा के अस्तित्व का ज्ञान होता है। द्रष्टा के इस संयोग का कारण अविद्या है। अविद्या को हटाने के लिए अखण्ड विवेक-ख्याति का अभ्यास करना होगा। चूँकि विवेक-ख्याति चित्त-शुद्धि के बाद ही हो सकती है, इसलिए चित्त-शुद्धि के साधन-रूप अष्टांगयोग का ध्यान-मार्ग बताया गया। उसमें प्रथम यम-नियमों का अनुष्ठान और उसके प्रतिबन्धों के निवारणार्थ प्रतिपक्ष-भावना का विवेचन करने के बाद आसन-सिद्धि, प्राणायाम-सिद्धि तथा प्रत्याहार-सिद्धि तक विवेचन किया गया। ० ० ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीय

विभूतिपाद

[इस पाद के ५५ सूत्रों में से सिद्धियों का प्रतिपादन करनेवाले सूत्रों को छोड़कर, साधकोपयोगी १८ सूत्र ही यहां लिये गये हैं—सूत्र १ से १२, ३५, ३७, ४९ से ५१ तथा ५५। १२ के बाद के सूत्रों की मूल-संख्या प्रत्येक सूत्र के अन्त में दी गयी है।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१. धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या

२. संयम-विचार

३. निरोध, समाधि और एकाग्रता के परिणाम

४. सिद्धियों का मिथ्यात्व

५. आत्म-ख्याति और विवेक-ख्याति

६. कैवल्य की व्याख्या

०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या : १ :

१. देशबन्धः चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

चित्तस्य	: चित्त को
देश	: एक-ही स्थान में यानी आत्मा या ईश्वर के विषय में
बन्धः	: बद्ध करना, बाँधना, स्थिर करना
धारणा	: 'धारणा' है।

दिनभर मन में असंख्य प्रत्यय उठते रहते हैं। वे प्रायः सांसारिक विषयों के ही होते हैं। मन को इन्हीं प्रत्ययों की आदत लगी हुई है। इसीमें जीवात्मा को आनन्द आता है। लेकिन अंत तक ये सांसारिक या जागतिक विषय के प्रत्यय शांति नहीं देते। साधक शांति के लिए साधना करता है। यम-नियमों का अनुष्ठान करके, आसन लगाकर, प्राण और इन्द्रियों के द्वार बन्द कर देने के बाद मन का द्वार बन्द करना होता है। इसीका नाम 'धारणा' है। इसके लिए जगत् के किसी भी विषय में चित्त को लीन करने से काम नहीं चलेगा। साधक को तो समाधि के द्वारा शांति के सागर में मग्न होना है। इसलिए दुनियां के सब प्रत्ययों को हटाकर केवल आत्मा या ईश्वर का ही चिंतन घंटों तक करते रहने का अभ्यास करना होगा। राम, कृष्ण, बुद्ध या ऐसी ही किसी विभूति की मूर्ति के गुणों का चिन्तन करना भी 'धारणा' ही है। धीरे-धीरे गुणों का चिन्तन कम करके, केवल साकार मूर्ति में लीन हो जाना चाहिए। साथ में नामजप तो होना ही चाहिए। लेकिन ईश्वर या आत्मा का तात्त्विक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिन्तन करने में चित्त को घंटों लीन रखना भी 'धारणा' का ही अभ्यास है। इनमें से जो अनुकूल हो, उसीका अभ्यास करना अच्छा है।

इस प्रकार किसी मूर्ति, आत्मा या ईश्वर के चिन्तन में तल्लीन हो जाने के बाद 'ध्यान' का अभ्यास करना होता है।

(उपर्युक्त ध्यानाभ्यास अगले सूत्र में वर्णित है।)

× × ×

२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

तत्र	: उसमें यानी आत्मा या ईश्वर-विषयक चिंतन करते-करते
प्रत्यय	: आत्मा या ईश्वर के ही प्रत्यय में
एकतानता	: तल्लीन हो जाना, उसी एक प्रत्यय की अखण्ड धारा का बहना
ध्यानम्	: 'ध्यान' है।

ध्यान में आत्मा या ईश्वर के चिंतन में या मूर्ति-विशेष के गुण-चिंतन में तल्लीन हो जाने का अभ्यास अभिप्रेत है। इस अभ्यास का परिणाम यह होगा कि सांसारिक या जागतिक विचार मन में उतनी देर तक उठेगा नहीं। इसका अर्थ यह कि धारणा में मन का द्वार बन्द हो जाता है। इस प्रकार प्राण, इंद्रियाँ और मन—शरीर के इन तीनों द्वारों के बन्द हो जाने पर भीतर जीव का केवल आत्म-स्वरूप ही रह जाता है। यही आत्मा या साक्षी बाहर ब्रह्माण्ड में भी है। उसे 'ईश्वर' कहते हैं। आत्मा या ईश्वर के रूप में यह जो जीव का अपना स्वरूप है, उसीके प्रत्यय की धारा बहने देने का अभ्यास धारणा के बाद करना होता है। यही ध्यान-जन्य चित्त-वृत्ति-निरोध की भूमिका है। इसमें एक आसन पर बैठकर आँखें बंद करके आत्म-प्रत्यय की धारा का अनुभव करना होता है। प्रथम पाद में जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगात्मक चित्त-वृत्ति-निरोध बताया है, वह जागृति-काल या जाग्रदवस्था में सभी सात्त्विक व्यवहारों के साथ-साथ अनुभव में आनेवाला है। उसमें सृष्टि का अनुभव नष्ट नहीं होता। परन्तु इस ध्यान में सृष्टि के प्रत्ययों को नष्ट करके आत्मानुभव करने की चेष्टा है। योग में सृष्टि के प्रत्ययों का अनुभव करते हुए आत्मा या ईश्वर का अनुभव करना है। ध्यान-भूमिका के बाद योग-भूमिका प्राप्त हो सकती है। इस तरह तैलधारावत् अविच्छिन्न, अखण्ड आत्म-प्रत्यय की धारा एक घण्टे तक बहने का अनुभव होता है, तो उसी समय उसे मालूम हो जाता है कि सच्ची शांति या सुख किसमें है; और तब उसके मन में यह बात ठीक तरह जम जायेगी कि सृष्टि के पाँच विषयों में कोई सुख नहीं है। इस आत्म-प्रत्यय की धारा में 'मैं देह से भिन्न हूँ' यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। सम्प्रज्ञात-भूमिका में जो अस्मिता-निरोध बताया है और ध्यान में जो आत्म-प्रत्यय की धारा बतायी है, दोनों का अर्थ एक ही है।

(ध्यान में ध्याता, ध्येय, ध्यान—ऐसी भेद-जन्य प्रतीति है। यह त्रिविध भेद समाधि में नष्ट हो जाता है। यह समाधि अगले सूत्र में बतायी गयी है।

× × ×

३. तदेव अर्थमात्र-निर्भासम् स्वरूपशून्यम् इव समाधिः ॥ ३ ॥

तत् एव	: उसी
अर्थमात्र	: ध्येयरूप आत्मतत्त्व का
निर्भासम्	: भासमान होना, अनुभव होना
स्वरूप	: (और) अपना जीव-स्वरूप
शून्यम् इव	: शून्यवत् हो जाना (अपना जीवस्वरूप उस आत्मतत्त्व में लीन करना)
समाधिः	: समाधि है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान में आत्म-प्रत्यय की धारा बहने लगती है। लेकिन उसमें ध्याता, ध्येय और ध्यान—ऐसी त्रिपुटी रहती है। यह भेद आत्म-प्रत्यय की धारा में लीन होते-होते नष्ट हो जाता है। फिर केवल ध्येयरूप आत्मतत्त्व ही शेष रहता है। ध्याता यानी ध्यान करनेवाला जीवात्मा और उसका ध्यान, दोनों ध्येयरूपी आत्म-तत्त्व में खो जाते हैं। इस अवस्था में जीवात्मा का लय हो जाने के कारण उतनी देर तक देह के साथ उसका सम्बन्ध छूट जाता है। इसलिए उस समय देह के किसी अवयव को काटने पर भी कुछ पता नहीं लगेगा। यह महान् आनन्द की अवस्था है। लेकिन यह समाधि की भूमिका मोक्ष की स्थिति नहीं है। जीवात्मा इस समाधि-स्थिति में अपना जीव-स्वरूप खो देता है। लेकिन व्युत्थान-काल में जीवात्मा अपने जीव-स्वरूप को आत्म-स्वरूप में विलीन करके मृत्युपर्यन्त अपना जीवन व्यतीत करता है— तभी उसको मोक्ष मिल सकता है, अन्यथा नहीं। यह ध्यान में रखना जरूरी है। हरि-दर्शन रूप निर्वितर्का समापत्ति और यह ध्यानजन्य समाधि, दोनों का स्वरूप-वर्णन एक-सा लगता है, लेकिन इन दोनों समाधियों में जो भेद है, वह समझ लेना चाहिए। इस ध्यान-जन्य समाधि में जीवात्मा अपना स्वरूप आत्मा में शून्य कर देता है और सृष्टि भी शून्य हो जाती है। इसलिए यह अवस्था जागृति-काल की नहीं है। हरि-दर्शन-रूप समापत्ति में जीव-स्वरूप का लय नहीं होता। सृष्टि का बाह्य नाम-रूप-आकृति का स्वरूप शून्यवत् होता है और उसमें निहित ईश्वरीय तत्त्व में जीवात्मा तल्लीन होता है। यह जागृति-काल की अवस्था है। इसमें जीवात्मा देह से अलग द्रष्टा की स्थिति में रहकर देह-सहित सारी सृष्टि को हरि-रूप देखता है। अपने को या सृष्टि को इस अवस्था में खोना नहीं है; लेकिन ध्यान-जन्य समाधि में अपने को और सारे विश्व को खो देना है। इतना अन्तर इन दोनों समाधियों में है। यह सबीज समाधि है, निर्बीज नहीं। क्योंकि जीव-स्वरूप उतनी देर तक शून्य हो जाता है, पर समाधि में से जागने के बाद फिर उसका वही पुराना स्वरूप विद्यमान रहता है। ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४. त्रयम् एकत्र संयमः ॥ ४ ॥

त्रयम्	: धारणा, ध्यान और समाधि— तीनों का
एकत्र	: एक साथ होना
संयमः	: 'संयम' कहलाता है

धारणा, ध्यान और समाधि, तीनों मिलकर एक बड़ी भारी शक्ति है। इस शक्ति का नाम 'संयम' है। इस शक्ति का उपयोग आत्मज्ञान प्राप्त करने में ही करना चाहिए। संयम से नाना प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। इन सिद्धियों का वर्णन इस पाद में किया गया है। इन सिद्धियों को बिलकुल तुच्छ समझकर साधक को आगे का प्रवास करने की दृष्टि रखनी चाहिए। नहीं तो साधक का भारी पतन होगा। इसीलिए अगले सूत्र में इस संयम का फल 'आत्मज्ञान' बताया गया है। साधक को अपने सामने वही लक्ष्य रखना चाहिए।

× × ×

५. तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

तत्	: उस धारणा, ध्यान, समाधि-रूपी संयम में
जयात्	: स्थिर या सिद्ध होने से
प्रज्ञा	: आत्मज्ञान-रूपी प्रज्ञा का
आलोकः	: प्रकाश मिलता है।

अष्टांग-योग की साधना आत्मज्ञान-रूपी विवेक-ख्याति प्राप्त करने के लिए बतायी गयी थी। वह फल अब यहाँ वर्णित है। प्रथम पाद में हरि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन-रूप सबीज समाधि से ऋतंभरा प्रज्ञा की सिद्धि बतायी थी। यहाँ उस आत्म-ज्ञानरूपी प्रज्ञा का निरूपण है।

(अगले सूत्र में संयम के विनियोग का वर्णन है।)

× × ×

६. तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

तस्य	: उस संयम का
विनियोगः	: उपयोग या अभ्यास
भूमिषु	: एक के बाद एक यानी क्रमानुसार ही करना चाहिए।

धारणा के बाद ध्यान और उसके बाद समाधि—इस तरह का जो क्रम यहां बताया है। उसी क्रमानुसार इन तीनों का अभ्यास करना चाहिए। धारणा और ध्यान की साधना किये बिना एकदम समाधि के लिए प्रयत्न करने से सफलता मिलनेवाली नहीं है।

(अगले सूत्र में बताया जा रहा है कि ये तीनों साधन अंतरंग हैं।)

× × ×

७. त्रयम् अन्तरङ्गम् पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

त्रयम्	: धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीनों
पूर्वेभ्यः	: पूर्वोक्त यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—इन पाँचों की अपेक्षा
अन्तरङ्गम्	: भीतरी अंग हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये पांच अष्टांगयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के बाह्य अंग हैं। इनकी अपेक्षा धारणा, ध्यान और समाधि के—ये तीन भीतरी अंग हैं। इन सबकी साधना क्रमानुसार ही करनी चाहिए।

(अगले सूत्र में बताया है कि ये तीनों निर्बीज समाधि के बहिरंग हैं।)

× × ×

८. तद् अपि बहिरङ्गम् निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

तत्	: वह (धारणा, ध्यान और समाधि)
अपि	: भी
निर्बीजस्य	: निर्बीज समाधि का
बहिरङ्गम्	: बाहरी अंग हैं।

यम-नियमादि की अपेक्षा से अंतरंग साधन होने पर भी, धारणा-ध्यान-समाधि निर्बीज समाधि के लिए बहिरंग साधन ही हैं।

निरोध, समाधि और एकाग्रता के परिणाम :३:

९. व्युत्थान-निरोध-संस्कारयोः अभिभव-प्रादुर्भावौ निरोध-क्षण-चित्तान्वयः निरोधपरिणामः ॥ ९ ॥

व्युत्थान	: मन में उठे हुए संस्कार, और
निरोध	: निरोध-संस्कार—इन
संस्कारयोः	: दोनों संस्कारों में
अभिभव	: उठे हुए संस्कारों के दबने या हटने तथा
प्रादुर्भावौ	: निरोध-संस्कारों के खड़े होने पर
निरोध-क्षण	: निरोध के क्षण में
चित्त	: चित्त को
अन्वयः	: अन्वित कर देना, जोड़ देना (चित्त को लगाना)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरोध-परिणामः : चित्त की निरोधावस्था या निरोध-भूमिका है।

अब तक योग-सूत्रकार ने यह नहीं कहा था कि चित्त के विचारों को किस तरह, किस युक्ति से रोका जाय। इस सूत्र में पाँच युक्तियां बता रहे हैं।

पहली युक्ति यह है कि साधक आँखें बन्द करके सगुण ध्यान करने बैठ जाय, तब भीतर मन में राम, कृष्ण या देवी की मूर्ति लाकर उसमें चित्त को डुबं दे। यह सध जाने के बाद मूर्ति मन में लाने की जरूरत नहीं रहेगी। चित्त अपने-आप निर्विचार रह सकेगा।

दूसरी युक्ति यह है कि साधक आसन लगाकर विचारों को रोकने का अभ्यास कर रहा है। मन में एक संस्कार, एक विचार उठता है। उसे वह हटाता है। एक-दो क्षण में फिर एक विचार उठता है। इस तरह विचार-चक्र चलता रहता है। प्रश्न यह उठता है कि इसे रोका कैसे जाय? सूत्रकार कह रहे हैं—एक संस्कार उठता है और उसका अभिभव करने से यानी हटाने से निरोध-संस्कार का प्रादुर्भाव होता है। यह जो आधा या एक मिनट का निरोध-संस्कार का क्षण है, उस निरोध के क्षण में ही चित्त को लगाओ। दो संस्कार-प्रत्ययों या विचारों के बीच का जो क्षण मिलता है, उस क्षण में ही, उस अवस्था में ही चित्त को लीन कर देने का अभ्यास करने पर भिन्न-भिन्न प्रत्ययों का उठना रुक जाता है। दो प्रत्ययों के बीच के क्षण पर ही लक्ष्य रखने का अभ्यास करना एक युक्ति है।

तीसरी युक्ति यह है कि मन में उठनेवाले विचारों को गिनते जायँ। इतना ख्याल रखना है कि एक के बाद एक उठनेवाले इन प्रत्ययों को मुझे सिर्फ पहरेदार बनकर गिनना है, और किसी पर ध्यान नहीं देना है। इतना करने से ही द्रष्टापन का अभ्यास शुरू हो जाता है और जहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम सतत द्रष्टा ही बनकर रहने में, वहाँ प्रत्ययों का उठना तुरंत बन्द हो ही जाना चाहिए। इस अभ्यास में हमें सतत द्रष्टा ही बनकर रहना है, अपने द्रष्टापन को छोड़ना नहीं है। जहाँ द्रष्टापन का अनुसन्धान (सिलसिला) छूट जाता है, उसी क्षण प्रत्ययों का उठना शुरू हो जाता है।

चौथी युक्ति यह है कि—'मन में बाहर से विचार आते रहते हैं' या 'मन में अपने-आप विचार, या प्रत्यय उठा करते हैं'—यह भाषा भूल जानी चाहिए। चित्त जड़ है, मैं चेतन, ज्ञाता हूँ। मैं ही चित्त के साथ एकरूप हो जाता हूं। इस वजह से प्रत्यय उठा करते हैं। यदि मैं अपना सम्बन्ध मन से तोड़कर अपने पर ही केन्द्रित रखूं तो प्रत्यय उठेंगे कहां से? प्रत्ययों का कोई आधार तो होना चाहिए। वह आधार तो 'मैं' ही हूँ, और कोई नहीं। मैं वह आधार समेट लेता हूं, तो मैं ही मैं रह जाता हूँ, इसमें स्वरूपस्थिति का ही अनुभव आता है। इस अभ्यास में दो बातें ध्यान में रखने की हैं: (१) "मैं ही प्रत्ययों के साथ एकरूप होकर प्रत्ययों को खड़ा करता हूं", और (२) "इसलिए मुझे अपने पर ही सतत ध्यान केन्द्रित रखने का अभ्यास करना चाहिए।"

पाँचवीं युक्ति यह है कि मन में जो सृष्टि पैदा होती है और बाहर जो सृष्टि खड़ी है, उन दोनों में जो फर्क है, जो भेद है, वह ठीक से ध्यान में लिया जाय। विचार करने से मालूम होगा कि बाह्य सृष्टि में नाना प्रकार के पंच-महाभूतात्मक पदार्थ हैं। उन पदार्थों का ज्ञान तभी होता है, जब वे पदार्थ चित्त पर आरूढ़ होते हैं, चित्त में प्रविष्ट होते हैं। चित्त में जो पदार्थ प्रविष्ट होता है, वह सिर्फ रूप और आकारात्मक ही होता है। बाह्य पदार्थ पंचमहाभूतों का बना होता है। उस पदार्थ का रूप और आकार ही मन में प्रविष्ट होता है। पदार्थ मन में प्रविष्ट न होता है, न हो सकता है। जैसे, हमने मकान देखा। तो, मकान का रूप और आकृति मन में प्रविष्ट होगी और हमें उस मकान का ज्ञान होगा। लेकिन रूप और आकृति मकान तो नहीं है। रूप और आकृति मकान का सिर्फ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भास है। उस रूप और आकार में ज्ञान नहीं है, मकान में ईंट, पत्थर, मिट्टी, सीमेंट, लकड़ी आदि नाना पदार्थ रहते हैं, और इसके अतिरिक्त मकान का रूप और आकार रहता है। इस तरह बाह्य पदार्थ में पदार्थ तथा उसका रूप और आकार, ऐसी दो चीजें रहती हैं और मन में प्रविष्ट पदार्थ सिर्फ रूप और आकारात्मक ही रहता है। यह रूप और आकार चूंकि वस्तु का सिर्फ भास है, इसलिए वह काल्पनिक पदार्थ है, ऐसा कह सकते हैं। बाहर एक स्त्री खड़ी है। उसे देखते ही एक माँ कहेगा, दूसरा पुत्री कहेगा, तीसरा पत्नी, चौथा चाची, पाँचवाँ भाभी। स्त्री एक होते हुए भी पांच आदमियों के मन में प्रविष्ट स्त्रियाँ सब काल्पनिक हैं। इस तरह के विश्लेषण से मन में उठनेवाले सब प्रत्यय काल्पनिक हैं, ऐसी प्रतीति होती है और उससे प्रत्यय शांत होते हैं तथा उनका उठना बन्द हो जाता है।

(अगले सूत्र में इस अभ्यास का परिणाम बतलाया गया है।)

× × ×

१०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

तस्य	: उस निरोध का
प्रशान्त	: शांत, निश्चल
वाहिता	: प्रवाह, धारा
संस्कारात्	: अपने संस्कार से ही यानी अपने बल से ही प्रवाहित होती है।

चित्त को निरोध-संस्कार के क्षण के साथ एक-रूप करने का अभ्यास करने से धीरे-धीरे उस निरोधावस्था का शांत, निश्चल, अखण्ड प्रवाह बहना (निरोध में जो शक्ति रहती है उससे) स्वाभाविक रीति से शुरू हो जाता है।

(इसके बाद की भूमिका अगले सूत्र में है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

सर्वार्थता	: चित्त की चंचलता और
एकाग्रतयोः	: चित्त को एकाग्रता, दोनों के (क्रमशः)
क्षय	: (यानी चंचलता के) क्षय से, नष्ट होने से
उदयौ	: (और एकाग्रता के) उदय से, स्थिर होने से
चित्तस्य	: चित्त को
समाधि-परिणामः	: समाधि की अवस्था या भूमिका प्राप्त होती है।

चित्त-वृत्ति-निरोध का शांत, निश्चल प्रवाह बहना शुरू हो जाने के बाद सब प्रकार की चित्त-चंचलता नष्ट हो जाती है और चित्त अत्यन्त एकाग्र बन जाता है। इसके फलस्वरूप समाधि-भूमिका प्राप्त हो जाती है।

(अगली भूमिका आगे के सूत्र में बता रहे हैं।)

× × ×

१२. शान्तोदितौ तुल्य-प्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रता-परिणामः ॥ १२ ॥

शान्त	: (पूर्व क्षण में) शांत हुए (और)
उदितौ	: (आगे के क्षण में) उदित
तुल्य-प्रत्ययौ	: समान प्रत्ययों का (बहते रहना)
चित्तस्य	: चित्त की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकाग्रता-परिणामः : एकाग्रता का परिणाम है। (इससे अद्वैत की भूमिका प्राप्त होती है।)

इस भूमिका को 'निर्बीज समाधि' कह सकते हैं। समाधि की अवस्था प्राप्त होने के बाद अद्वैतमूलक समान और शांत प्रत्यय की धारा जीवन में बहने लगती है, जिसमें भेद का पूरा अभाव हो जाता है। प्रथम पाद के अन्तिम सूत्र में निर्बीज समाधि का स्वरूप बताया है। 'सब प्रकार का सब ओर से निरोध' और 'समान और शांत अद्वैत प्रत्यय की धारा' इन दोनों स्वरूपों का अर्थ एक ही है। दोनों मिलकर पूरा अर्थ ध्यान में आ जाता है।

सिद्धियों का मिथ्यात्व : ४ :

[विषय-विवेचन की अनुकूलता की दृष्टि से आगे के छह सूत्रों का मूल क्रम बदल दिया है।]

१३. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणम् पुनः अनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

स्थानि	: इंद्रादि देवों के यानी सिद्धियों के
उपनिमन्त्रणे	: आमंत्रण देने पर यानी प्राप्त होने पर
सङ्ग	: (उन पर) प्रीति, और
स्मय	: मोह
अकरणम्	: नहीं करना है। क्योंकि
पुनः	: फिर से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनिष्ट : अनिष्ट (संसार) की
प्रसङ्गात् : प्राप्ति होगी ।

समाधि सिद्ध होने से सिद्धियाँ भी मिलती हैं । लेकिन उनको तुच्छ समझकर ही चलना चाहिए । उनके मोह में नहीं फँसना चाहिए । क्योंकि सिद्धियों के मोह में फँस जाने से पतित होने की सम्भावना रहती है और ऐसों का आचरण सदाचार-प्रेरक होने के बजाय दुराचार-प्रेरक ही साबित होगा । ये सिद्धियाँ समाधि में विघ्न डालनेवाली हैं ।

× × ×

१४. ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

ते : वे सिद्धियाँ
समाधौ : समाधि में
उपसर्गाः : विघ्न डालनेवाली हैं ।
व्युत्थाने : व्यवहार में या सांसारिक दशा में ही
सिद्धयः : 'सिद्धि' कही जाती हैं ।

समाधि प्राप्त होने के बाद या बीच में भी सिद्धियों का दर्शन होता है । किन्तु उन पर यदि हम मोहित होते हैं, तो समाधि प्राप्त नहीं होती, चाहे पहले समाधि प्राप्त की गयी हो । क्योंकि समाधि के लिए जो शक्ति और मनोबल चाहिए, वह सिद्धियों के मोह में पड़ने पर क्षीण होता है ।

०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१५. सत्त्व-पुरुषयोः अत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

सत्त्व	: चित्त के (और)
पुरुषयोः	: द्रष्टा जीवात्मा के
अत्यन्त-असङ्कीर्णयोः	: अत्यंत भिन्न होते हुए भी, उनके
प्रत्यय	: प्रत्ययों का
अविशेषः	: भिन्नत्व या अलगपन ध्यान में न आने से
भोगः	: (द्रष्टा को) चित्त के साथ भोग भुगतना पड़ता है। क्योंकि
परार्थात्	: चित्त द्रष्टा के भोग और मोक्ष के लिए ही है। (लेकिन)
स्वार्थ	: अपने स्वरूप पर
संयमात्	: संयम रखने से
पुरुष-ज्ञानम्	: आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

चित्त में अहं-प्रत्यय, चित्त के भिन्न-भिन्न भावों के प्रत्यय, और सृष्टि के नाना पदार्थों के प्रत्यय उठते हैं। इसमें एक बात ध्यान में आती ही नहीं कि अहं-प्रत्यय द्रष्टा साक्षी आत्मा का प्रत्यय है। अहं-प्रत्यय चेतन का है। चित्त के भाव और सृष्टि के अन्य प्रत्यय जड़ हैं। जड़ और चेतन परस्पर विरुद्ध यानी अत्यंत भिन्न होने पर भी दोनों प्रत्यय अविशेष यानी समान लगते हैं। इसी कारण मन के साथ द्रष्टा जीवात्मा एकरूप होकर भोग भोगता है। इसमें हृदिच्छ मुक्ति है तो विवेक-ख्याति का आश्रय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेना होगा। धारणा, ध्यान और समाधि-रूपी संयम-शक्ति को अपने स्वरूप पर ही केन्द्रित करने का आदेश सूत्रकार दे रहे हैं। इसीसे आत्म-ज्ञानरूपी विवेक-ख्याति प्राप्त होती है और भोग भोगना नहीं पड़ता। धारणा, ध्यान और समाधि-रूपी जो प्रचण्ड संयम-शक्ति है, वह किसी भी पदार्थ पर केन्द्रित करने से उसका ज्ञान होता है और उसकी सिद्धियाँ भी मिलती हैं। लेकिन इससे मोक्ष नहीं मिलेगा। समाधि एक प्रकार का आत्मलय है, आत्मज्ञान नहीं है। यदि व्युत्थान-काल में उस समाधि के अनुभव के साथ अखण्ड स्वरूपानुसन्धान रहता है, तो ही आत्मज्ञान की भूमिका प्राप्त हो सकती है। ध्यान-जन्य समाधि के बाद की यह भूमिका है, इसलिए समाधि से प्राप्त शक्ति को स्वरूपानुसन्धान में ही लगाना चाहिए, सिद्धि प्राप्त करने में नहीं।

(आत्म-ख्याति का फल अगले सूत्र में बताया गया है।)

× × ×

१६. सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वम् सर्वज्ञातृत्वम् च ॥ ४९ ॥

सत्त्व	: चित्त (और)
पुरुष	: पुरुष की
अन्यता	: भिन्नता
ख्याति-मात्रस्य	: जाननेवाले को ही
सर्व-भाव	: मन के सब सात्त्विक भावों पर
अधिष्ठातृत्वम्	: प्रभुत्व मिल जाता है
च	: और
सर्वज्ञातृत्वम्	: सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने कि शक्ति उपलब्ध होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्त से अपने को अलग कर देने से चित्त के भावों पर स्वामित्व प्राप्त होता है और बुद्धि सर्वग्राही बन जाती है, यह आत्म-ख्याति का स्वाभाविक परिणाम है। यह टल नहीं सकता। लेकिन मोक्ष के लिए तो इसका भी वैराग्य होना चाहिए।

(उपर्युक्त विषय अगले सूत्र में कहा गया है।) ०

कैवल्य की व्याख्या : ६ :

१७. तद्वैराग्यात् अपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

तत्-वैराग्यात् अपि	: उसका भी वैराग्य होने से
दोष-बीज	: बन्धन-रूपी दोष-बीज का
क्षये	: क्षय होकर
कैवल्यम्	: मोक्ष प्राप्त होता है।

चित्त के भावों पर विजय प्राप्त होती है और बुद्धि सर्वग्राही बन जाती है, लेकिन इसकी भी अस्मिता मन में रह जाती है। तब यही समझना चाहिए कि द्रष्टा मन से पूरा अलग नहीं हुआ, बल्कि मन के साथ एकरूप ही हुआ है। बन्धन तो इसीसे है। फिर मोक्ष कैसे मिलेगा? इसलिए द्रष्टा को इसका जरा भी भान नहीं रहना चाहिए। द्रष्टा केवल अपने स्वरूप में ही रहे, देह की सब सात्त्विक क्रियाएँ, गुण, शक्ति, ज्ञान—ये सब-के-सब प्रकृति के हैं, या तो ईश्वर के हैं—इस प्रकार का भान उसको अखण्ड रहे, यही मोक्ष है।

(मोक्ष की दूसरी व्याख्या अगले सूत्र में है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१८. सत्त्व-पुरुषयोः शुद्धि-साम्ये कैवल्यम् इति ॥ ५५ ॥

सत्त्व	: चित्त (और)
पुरुषयोः	: पुरुष की
शुद्धि-साम्ये	: समान शुद्धि
कैवल्यम् इति	: मोक्ष है।

पुरुष अर्थात् आत्मा तो अखण्ड शुद्ध ही है। आत्मा जितना शुद्ध है, निर्मल है, उतनी ही निर्मलता चित्त को यानी चित्तरूप जीवात्मा को प्राप्त हो जाती है। यही मोक्ष है। जीवात्मा साधना-द्वारा अपने को चित्त से अलग करके अत्यन्त विशुद्ध हो जाने से अपने स्वरूप में अर्थात् साक्षी आत्मा में मिल जाता है। आत्मा से उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रह जाता। यही अंतिम अवस्था है।

यहाँ तीसरा पाद समाप्त होता है। इसलिए साररूप में इस पाद की समालोचना करना ठीक होगा।

इस पाद के प्रारंभ में धारणा, ध्यान और समाधि की व्याख्या, उसका बाह्य नाम, फल-विनियोग आदि समझाकर निरोध-भूमिका, समाधि-भूमिका और अंतिम अद्वैत-भूमिका की व्याख्या बतायी गयी। फिर समाधि से प्राप्त होनेवाली सिद्धियों को तुच्छ समझने की सलाह देकर आत्म-ख्याति के द्वारा अविद्या, अस्मिता के दोष-बीज को जलाकर कैवल्य प्राप्त करने की बात कही गयी है। ० ० ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ
कैवल्यपाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१. योगी के कर्म और वासना का विचार
२. शून्यवाद और विज्ञानवाद का खण्डन
३. चित्त बनाम आत्मा
४. विवेक-ख्याति और उसका फल
५. धर्ममेघ-समाधि और उसका फल
६. गुणों का विलय और कैवल्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगी के कर्म और वासना का विचार : १ :

[इस पाद के कुल ३४ सूत्रों में से सिद्धि सम्बन्धी प्रारम्भ के ६ सूत्रों को छोड़कर शेष सब सूत्र लिये गये हैं ।]

१. कर्माशुक्लाकृष्णम् योगिनः त्रिविधम् इतरेषाम् ॥ ७ ॥

योगिनः	: योगी के
कर्म	: कर्म
अशुक्ल	: न पुण्य-फल देनेवाले हैं, (और)
अकृष्णम्	: न पाप-फल देनेवाले हैं ।
इतरेषाम्	: लेकिन औरों के (कर्म)
त्रिविधम्	: तीन प्रकार का फल देनेवाले होते हैं ।

आत्मज्ञान से योगियों के कर्म दग्ध-बीज यानी निर्बीज हो जाते हैं । अतः उनका फल भुगतने के लिए योगियों को जन्म नहीं लेना पड़ता । (यहाँ पर भगवद्गीता के अध्याय ४, श्लोक ३७ तथा अध्याय १३, श्लोक २३ का शांकर-भाष्य पढ़ना चाहिए ।) आत्मज्ञान के अभाव में औरों को पुण्य-फल, पाप-फल और पुण्य-पाप-मिश्रित फल भुगतने पड़ते हैं । यानी तीन प्रकार का फल भुगतने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का जन्म लेना पड़ता है । आत्मज्ञान हो जाने तक यह चक्र चलता है । (यहाँ भगवद्गीता के अध्याय १८ का श्लोक १२ द्रष्टव्य है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२. ततः तद्विपाकानुगुणानाम् एव अभिव्यक्तिः वासनानाम् ॥ ८ ॥

ततः	: तीन प्रकार के कर्म करने से
तत्	: उसके
विपाक	: तीन प्रकार के फल के
अनुगुणानाम्	: अनुसार, अनुरूप
एव	: ही
वासनानाम्	: वासनाओं की
अभिव्यक्तिः	: अभिव्यक्ति यानी प्रकटीकरण या निर्माण होता है।

पुण्य-कर्म का पुण्य-फल और तदनुसार सद्वासना की प्राप्ति तथा पाप-कर्म का पाप-फल और तदनुसार असद्वासना की प्राप्ति, कर्म का सिद्धान्त ही है। कर्म से वासना, वासना से जन्म, और जन्म से फिर कर्म और फिर वासना इस प्रकार का यह चक्र है।

(अगले सूत्र में यह बताया गया है कि भिन्न-भिन्न जन्म मिलने पर भी वासना अखण्ड रहती है।)

× × ×

३. जाति-देश-काल-व्यवहितानाम् अपि आनन्तर्यम् स्मृतिसंस्कारयोः एकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

जाति	: जाति,
देश-काल	: देश और काल
व्यवहितानाम्	: भिन्न-भिन्न होते हुए
अपि	: भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनन्तर्यम्	: (वासनाएं) अखण्ड रहती हैं, क्योंकि
स्मृति-संस्कारयोः	: (वासनाएँ) स्मृति और संस्कार के साथ
एकरूपत्वात्	: एकरूप ही रहती हैं, उनसे भिन्न नहीं रहतीं ।

वासना, इच्छा, विभिन्न संस्कार—इन सबके मूल में स्मृति है। भीतर की सारी मानसिक सृष्टि स्मृति-जन्य ही है। वासना एक विशेष संस्कार है, इसलिए वासनाएँ स्मृति और संस्कार से भिन्न नहीं हैं, एकरूप ही हैं। स्मृति मन का गुण है। मनरूप जीवात्मा एक देह छोड़कर दूसरी देह धारण करता है। तब उसके साथ ही ये स्मृति-संस्कार-रूप वासनाएँ रहती हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न जाति में, भिन्न-भिन्न देश में या भिन्न-भिन्न समय पर अनेक जन्म लेने के बाद भी जीवात्मा के साथ वासना अखण्ड रहती है। उसका संबंध टूटता नहीं है।

(अगले सूत्र में बताया गया है कि वासनाएँ अनादि हैं।)

× × ×

४. तासाम् अनादित्वम् च आशिषः नित्यत्वात् ॥ १० ॥

तासाम्	: वे वासनाएँ
अनादित्वम्	: अनादि हैं।
च	: क्योंकि
आशिषः	: इच्छाएँ
नित्यत्वात्	: नित्य हैं।

सृष्टि के पदार्थों के साथ नित्य हमारा जो संबंध आता है, उससे भिन्न-भिन्न प्रकार की इच्छाएँ पैदा होती हैं और उन इच्छाओं को नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पोषण मिलते रहने से वे इच्छाएँ वासना का रूप धारण कर लेती हैं। चूंकि इच्छाएँ नित्य हैं, इसलिए वासनाएँ भी अनादि हैं।

(ये वासनाएँ किस आधार पर जीती हैं और उनका त्याग किस तरह हो सकता है—यह अगले सूत्र में बताया गया है)।

× × ×

५. हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वात् एषाम् अभावे तदभावः ॥ ११ ॥

हेतु	: (जीवात्मा का अज्ञानरूपी कारण,
फल	: (मन के साथ जीवात्मा का संयोगरूपी) फल,
आश्रय	: जीवात्मा का कर्ता, भोक्तापन-रूप आश्रय,
आलम्बनैः	: इन सबका आधार लेकर
संगृहीतत्वात्	: वासनाएँ जीवित रहती हैं, इसलिए
एषाम्	: इनके
अभावे	: अभाव में
तत्-अभावः	: उन वासनाओं का भी अभाव हो जाता है।

पहले जीवात्मा 'मैं देह हूं' इस अविद्या की कल्पना में फँस जाता है। बाद में इसी कल्पना के कारण मन के साथ संयोगरूपी फल मिलता है। इस संयोग से जीवात्मा कर्ता और भोक्ता बन जाता है। इन तीनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आधार लेकर वासनाएँ अपना अस्तित्व कायम रखती हैं। लेकिन जब जीवात्मा 'मैं देह हूँ' इस अविद्या की कल्पना को हटा देता है, मन के साथ संयोग तोड़ देता है, कर्तृत्व और भोक्तृत्व को मिटा देता है और अपने द्रष्टापन के स्वरूप में ही रहने लगता है, तब चूंकि वासना का आधार निकल जाता है, इसलिए वासना अपने-आप नष्ट हो जाती है। ०

शून्यवाद और विज्ञानवाद का खण्डन : २ :

६. अतीतानागतम् स्वरूपतः अस्ति अध्वभेदात् धर्माणाम् ॥ १२ ॥

धर्माणाम्	: कार्यों का यानी भिन्न-भिन्न पदार्थों का
अध्व-भेदात्	: अवस्थाभेद होने से, रूपांतर होते रहने से
अतीत	: भूतकाल (और)
अनागतम्	: भविष्यकाल में
स्वरूपतः	: (उन पदार्थों का) स्व-रूप में अर्थात् नित्य कारणरूप द्रव्य में
अस्ति	: अस्तित्व रहना (होना) ही चाहिए।

कपास का रूपांतर सूत में हुआ, यानी कपास को सूत की अवस्था प्राप्त हुई और फिर सूत को वस्त्र की अवस्था प्राप्त हुई। कपास से 'सूत' नामक पदार्थ बना। इसलिए सूत कार्य है और कपास उसका कारण-रूप द्रव्य है। सूत से वस्त्र-रूपी एक पदार्थ बना। यदि सूत और वस्त्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूपी कार्य में कपास-रूपी कारण-द्रव्य नित्य नहीं रहता, तो सूत और वस्त्र किस आधार पर रहता ? फिर कार्य का अर्थ क्या ? कारण-रूप द्रव्य की विभिन्न अवस्थाओं का नाम ही कार्य है। लेकिन कारण-रूप द्रव्य को विभिन्न अवस्था के प्राप्त होने पर भी स्व-रूपतः उसका अस्तित्व भूत, वर्तमान और भविष्य काल में ज्यों-का-त्यों बना रहता है। कपास की एक अवस्था सूत है, दूसरी अवस्था वस्त्र है और इस प्रकार दो स्वतंत्र कार्य या पदार्थ हुए। लेकिन इससे कपास-रूपी कारण-द्रव्य में क्या फर्क हुआ ? वेदान्त की भाषा में एक ही अलौकिक ब्रह्म या परमात्मा नामक कारण-द्रव्य पर उसकी अलौकिक शक्तिसे—जिस शक्ति नाम 'माया' है—भिन्न-भिन्न रूप, गुण और आकारों का भास होता है और इसका नाम भिन्न-भिन्न कार्य है। लेकिन आकार या रूप कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

शून्यवादी मानते हैं कि अभाव में से सब पदार्थ निर्मित होते हैं। इस सूत्र में उस शून्यवाद का उत्तर दिया गया है। [इस सन्दर्भ में ब्रह्मसूत्र के अध्याय २, पाद २, अधिकरण ४ के सूत्र २६-२७ पर शांकर-भाष्य द्रष्टव्य है।]

(अगले सूत्र में बता रहे हैं कि पदार्थ स्थूल-सूक्ष्म-गुणयुक्त होते हैं।)

× × ×

७. ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मानः ॥ १३ ॥

ते	: वे कार्यरूप पदार्थ
व्यक्त	: स्थूल, (और)
सूक्ष्माः	: सूक्ष्म होते हैं (तथा)
गुणात्मानः	: सत्त्व, रज और तम--इन तीन गुणों से युक्त रहते हैं।

सभी कार्य-रूप पदार्थों का त्रिविध वर्गीकरण निश्चित है। लोकमान्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिलक ने 'गीता-रहस्य' में सांख्य शास्त्र और क्षराक्षर-विचार-प्रकरण में इसका सुन्दर विवेचन किया है।

(अगले सूत्र में कार्य का कारण में लय बताया गया है।)

× × ×

८. परिणामैकत्वात् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम	: (पदार्थों का यानी कार्यों का) अंतिम लय, पर्यवसान
एकत्वात्	: एक ही कारणरूप द्रव्य में होता है, इसीलिए
वस्तु-तत्त्वम्	: इस कारणरूप एक द्रव्य को 'वस्तु-तत्त्व' कहते हैं।

घड़ा मिट्टी का कार्य। मिट्टी घड़े का कारण है। घड़ा फूट जाता है, तो मिट्टी में उसका लय होता है। कार्य की उत्पत्ति में वह कारण से अभिन्न रहता है और कार्य के विनाश-काल में भी वह कारण से अभिन्न रहता है। किसी भी अवस्था में कारण से कार्य भिन्न नहीं होता है—यह निश्चय सिद्धांत है। यह कारण-रूप द्रव्य एक ही है। इसलिए इसको 'वस्तुतत्त्व' कहते हैं। वस्तुतत्त्व का अर्थ लोकमान्य तिलक ने 'गीता-रहस्य' में दिया है 'स्वयंभू', जो किसीका विकार नहीं है, बल्कि सब विकारों का कारण है। सांख्य इसे 'प्रकृति' कहते हैं। 'प्रकृति' के जो 'कार्य' हैं, वे सब 'प्रकृति' के 'विकार' हैं। सांख्यों ने उसे 'विकृति' नाम दिया है। 'सारा जगत् प्रकृति और विकृति का बना हुआ है। पुरुष न प्रकृति है, न विकृति है।' कार्य कारण से बिलकुल अभिन्न रहता है—यह विषय ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के प्रथम-पाद के कई सूत्रों में प्रतिपादित किया गया है।

(इस प्रकार 'शून्यवाद' का खण्डन करके अगले तीन सूत्रों में 'विज्ञानवाद' का खण्डन है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६. वस्तु-साम्ये चित्तभेदात् तयोः विभक्तः पन्थाः ॥१५॥

वस्तु-साम्ये	: वस्तु यानी पदार्थ एक प्रकार का होते हुए भी
चित्त-भेदात्	: चित्त भिन्न-भिन्न होने के कारण
तयोः	: उन दोनों (यानी वस्तु और चित्त) का
विभक्तः	: भिन्न-भिन्न
पन्थाः	: मार्ग है (यानी विभिन्न कल्पनाएँ हैं, विभिन्न संबंध पैदा होते हैं।)

विज्ञानवादी बाह्य वस्तु का अस्तित्व ही नहीं मानते। उनका कहना है कि मन में जो भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ उठती हैं और उनका विज्ञान होता है, वही विज्ञान-मात्र पदार्थ हैं। (इस वाद का खण्डन ब्रह्म सूत्र के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के पाँचवें अधिकरण के सूत्र २८ से ३२ तक के शांकर-भाष्य में किया गया है।)

विज्ञानवादियों की एक आशंका यह है कि यदि बाह्य वस्तु का अस्तित्व है, तो वस्तु को देखकर सबके मन में एक-सी कल्पना और एक-सा भाव पैदा होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता। एक ही स्त्री किसी को माता, किसी को पत्नी, तो किसी को पुत्री दिखाई देती है।

सूत्रकार कह रहे हैं कि एक ही वस्तु को देखने पर जो विभिन्न कल्पनाएँ उठती हैं, उसका कारण यह है कि चित्त भिन्न-भिन्न है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि बाह्य वस्तु के बिना ही ये कल्पनाएँ उठ सकती हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उस स्त्री को देखकर किसीको पिता, पुत्र या गाय की कल्पना आती हो, सो भी नहीं है। स्त्री को देखने पर प्रत्येक के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन में स्त्री का ही ज्ञान होता है। यानी सबके मन में एक यही कल्पना उठती है कि यह स्त्री है, गाय या पुरुष नहीं। संबंध-भेद के कारण किसी के मन में माता की, तो किसी के मन में पुत्री की कल्पना उठती है और इस सम्बन्ध-भेद का कारण है चित्त-भेद।

(एक और प्रमाण अगले सूत्र में दिया जा रहा है।)

× × ×

१०. न च एक-चित्त-तन्त्रम् वस्तु तद् अप्रमाणकम् तदा किम् स्यात् ॥ १६ ॥

च	: और
वस्तु	: बाह्य वस्तु का अस्तित्व
एक-चित्त	: एक चित्त की कल्पना पर
तन्त्रम्	: निर्भर, उस कल्पना के अधीन
न	: नहीं है।
तत्	: (क्योंकि) वह चित्त की कल्पना
अप्रमाणकम्	: जब मन से निकल जाती है,
तदा	: तब
किम् स्यात्	: (उस बाह्य वस्तु का) क्या होगा ?

"चित्त में जो भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ उठती हैं, वे ही पदार्थ हैं। बाह्य पदार्थों का कोई अस्तित्व नहीं है। पदार्थों की कल्पना का कोई बाह्य आधार नहीं है"—ऐसा मान लें, तो यह आपत्ति उठती है कि चित्त में जब कल्पना का एक पदार्थ उत्पन्न होता है और वह कल्पना नष्ट होती है, तब उस पदार्थ का क्या होगा ? क्या वह नष्ट होगा ? उसे नष्ट हुआ मान लें, तो दूसरों को वही पदार्थ नजर कैसे आता है ? इसलिए यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि बाह्य वस्तु का स्वतंत्र अस्तित्व है और उसी के आधार पर भीतरी कल्पना उठती है। (यहाँ पर 'पंचदशी' का जीव-सृष्टि और ईश्वर-सृष्टि-प्रकरण द्रष्टव्य है।)

(एक और प्रमाण अगले सूत्र में है।)

× × ×

११. तद् उपरागापेक्षित्वात् चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १७ ॥

चित्तस्य	: चित्त को
तद्	: उस बाह्य वस्तु का
उपराग	: संबंध या स्पर्श होने की
अपेक्षित्वात्	: अपेक्षा रहती है, इसलिए
वस्तु	: पदार्थ का चित्त के साथ संबंध आने से
ज्ञात	: पदार्थ का ज्ञान होता है, तथा
अज्ञातम्	: (संबंध न आने पर, स्पर्श न होने पर) वस्तु अज्ञात रहती है, पदार्थ का ज्ञान नहीं होता।

यह अनुभव की बात है कि जब बाह्य पदार्थ के साथ चित्त का संबंध आता है, तभी उसका ज्ञान होता है—संबंध के अभाव में ज्ञान नहीं होता। कभी-कभी तो बाह्य पदार्थ सामने रहते हुए भी चित्त किसी दूसरे विषय में लीन हो जाता है, तब उस पदार्थ का कुछ पता नहीं रहता। जब तक बाह्य पदार्थ चित्त पर आरूढ़ नहीं होता, तब तक पदार्थ का ज्ञान नहीं होता, यह सत्य है। लेकिन यह भी सत्य है कि बाह्य पदार्थ के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्तित्व से ही हम बिलकुल इनकार कर दें, तब तो सृष्टि का कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। मन में पदार्थों की जो कल्पनाएं खड़ी होती हैं, वह एक प्रकार की स्मृति है, और अनुभव के बिना स्मृति उठ नहीं सकती। अतः स्मृति के लिए बाह्य पदार्थों के अनुभव की आवश्यकता होती है। एक बार पदार्थों का अनुभव करने के बाद जब-जब उसकी स्मृति आती है, तब-तब पदार्थों का सामने आना आवश्यक नहीं है। स्वप्न में पदार्थ होते ही नहीं हैं। जागृति में सृष्टि के पदार्थों का जो अनुभव हुआ है, उसकी स्मृति निद्रावस्था में आती है, और उसीका नाम 'स्वप्न' है। ०

चित्त बनाम आत्मा : ३ :

१२. सदा ज्ञाताः चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

तत्-प्रभोः	: चित्त के स्वामी उस सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान्
पुरुषस्य	: पुरुष, द्रष्टा, आत्मा को
चित्त	: चित्त की
वृत्तयः	: सब वृत्तियाँ, विचार, भाव
सदा	: सर्वदा, सतत, अखण्ड
ज्ञाताः	: ज्ञात हैं।
अपरिणामित्वात्	: क्योंकि पुरुष परिवर्तनशील नहीं है।

पिछले तीन सूत्रों में बाह्य वस्तु का अस्तित्व सिद्ध किया गया। अब तीन सूत्रों में चित्त को ही ज्ञाता माननेवालों का खण्डन किया जा रहा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुभव का आधार लेकर ही शुद्ध तर्क के द्वारा वस्तु को सिद्ध कर सकते हैं। अनुभव किसे कहते हैं ? अनुभव यह है—चित्त में अच्छी-बुरी वृत्तियाँ, विचार और भाव उठते रहते हैं और उनका ज्ञान होता रहता है। अब प्रश्न यह है कि ज्ञान किसको होता है ? यह तो नहीं मान सकते कि चित्त को ही चित्त का ज्ञान होता है, क्योंकि आंख को ही आंख का ज्ञान होता हो या हाथ को ही हाथ का ज्ञान होता हो, ऐसा नहीं है। अपने ही कंधे पर हम कैसे बैठ सकेंगे ? इसीके विपरीत हमें चित्त की परिवर्तनशीलता का अनुभव होता रहता है। जिसे चित्त की परिवर्तनशीलता का अनुभव आया, वह खुद परिवर्तनशील हो, तो चित्त की परिवर्तनशीलता का अनुभव सर्वथा असंभव है। चित्त में जो हमेशा परिवर्तन होता है, उसका अनुभव करने के लिए अनुभव करनेवाले को अखण्ड और नित्य होना होगा, तभी उसे चित्त की परिवर्तनशीलता का अनुभव हो सकता है। इसलिए चित्त के पीछे अपरिवर्तनशील, अखण्ड ज्ञाता को मानना ही पड़ेगा। इसीको 'पुरुष' या 'प्रत्यगात्मा' कहते हैं। यही हमारा स्वरूप है। चित्त को अपना ज्ञान या पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता।

(इसका एक और कारण अगले सूत्र में दे रहे हैं।)

× × ×

१३. न तत् स्वाभासम् दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

तत्	: वह चित्त
स्वाभासम्	: स्वयंप्रकाशी, स्वयम्भू
न	: नहीं है,
दृश्यत्वात्	: क्योंकि वह चित्त दृश्य है, ज्ञान-गोचर है, जाना जा सकता है।

देह का और सृष्टि के पदार्थों का हमें जैसा ज्ञान होता है, वैसा ही ज्ञान चित्त का भी होता है। इसका कारण यह है कि देह, सृष्टि और चित्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब दृश्य-कोटि के हैं। इसीलिए ये सब जड़ पदार्थ हैं। एक जड़ पदार्थ दूसरे जड़ पदार्थ को जानता है, ऐसा कभी अनुभव नहीं आता। इसलिए चित्त स्वयं-प्रकाशी नहीं है। स्वयं-प्रकाशी तो द्रष्टा है और उससे चित्त आदि सब जड़ पदार्थ जाने जाते हैं। चित्त जड़ है, तथा वह किसी दूसरे से जाना जाता है, इसलिए वह ज्ञाता का स्थान नहीं ले सकता, ऐसा बताया गया है।

(अगले सूत्र में एक और कारण बतलाया है।)

× × ×

१४. एकसमये च उभयानवधारणम् ॥ २० ॥

च	: और (उस चित्त को)
एक-समये	: एक साथ, एक ही समय
उभय	: दोनों का (पदार्थ का और अपना)
अनवधारणम्	: ज्ञान नहीं हो सकता।

अनुभव यह है कि हमें पदार्थ का और चित्त का ज्ञान एक साथ हो जाता है। चित्त को कागज की उपमा दे सकते हैं। कागज पर चित्र बनाये जाते हैं। लेकिन कागज को न उस चित्र का ज्ञान होता है, और न अपना ही होता है। उसी प्रकार चित्तरूपी कागज पर सृष्टि के अनंत पदार्थों के नाम, रूप, आकारात्मक चित्र अंकित होते हैं। उसके बाद चित्त में राग-द्वेषात्मक लहरें भी उठती हैं। चित्त को अपना और पदार्थों का ज्ञान एक साथ न होने का कारण यह है कि चित्त केवल पदार्थों का ग्रहण करने का साधन है। ग्रहण करने में ही चित्त तल्लीन होने के कारण, पदार्थ-ग्रहण के समय उसको अपना ज्ञान होना संभव ही नहीं है। लेकिन ज्ञाता तो केवल ज्ञाता ही रहता है, इसलिए उसको चित्त और विषयों का बोध एक साथ हो जाता है कि चित्त ने विषय-ग्रहण किया। (यहां ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के तीसरे पाद का सूत्र ३२ देख जाना उपयोगी होगा।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार चित्त को ही आत्मा माननेवालों का खण्डन हुआ।

(अगले सूत्र से चित्त के पीछे एक और चित्त मानकर उसे ही ज्ञाता माननेवाले पक्ष का खण्डन है।)

× × ×

१५. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेः अतिप्रसङ्गः स्मृति-सङ्करश्च ॥ २१ ॥

चित्तान्तर-दृश्ये	: एक चित्त दूसरे चित्त का दृश्य है, यानी एक चित्त का ज्ञान दूसरे चित्त को होता है, ऐसा मानें, तो
बुद्धि-बुद्धेः	: उसके पीछे फिर तीसरा-चौथा चित्त, इस प्रकार की
अति-प्रसङ्गः	: अनर्थ-परम्परा शुरू होगी।
च	: और, (इसीसे)
स्मृति	: स्मृति में
सङ्करः	: गड़बड़ी होगी।

पिछले तीन सूत्रों में यह सिद्ध किया गया कि चित्त के पीछे अखण्ड, अपरिवर्तनशील, ज्ञाता होना ही चाहिए, उसके बगैर चित्त का ज्ञान नहीं हो सकेगा। इस सिद्धांत को मान्य करते हुए भी एक पक्ष यह कहता है कि उस चित्त को जानने के लिए उसके पीछे एक और चित्त को ही ज्ञाता क्यों न माना जाय ? अब इस सूत्र में उसका उत्तर दे रहे हैं।

एक चित्त को जानने के लिए दूसरा एक चित्त मानते हैं, तो उस दूसरे चित्त को जानने के लिए एक तीसरा चित्त मानना पड़ेगा। फिर उस तीसरे को जानने के लिए चौथा चित्त मानना पड़ेगा। इस तरह अनवस्था होगी, अनर्थ होगा। इसका कहीं अंत नहीं आयेगा। इसलिए चित्तांतर की कल्पना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिद्ध नहीं हो सकती। इसको मानने पर इतने असंख्य चित्त हो जायेंगे कि उन सबकी स्मृति रखना ही अशक्य होगा। इसलिए स्मृति में गड़बड़ी होगी तथा व्यवहार ही चल नहीं सकता। इसलिए चित्त के पीछे चित्तांतर नहीं, स्वतंत्र, स्वयंभू, अखण्ड, अपरिवर्तनशील ज्ञाता को मानना ही पड़ेगा, यही सिद्ध होता है।

(अगले सूत्र में यही बात दूसरे प्रकार से बतायी गयी है।)

× × ×

१६. चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारापत्तौ स्व-बुद्धि-संवेदनम् ॥ २२ ॥

अ-प्रति-संक्रमायाः	: अपरिवर्तनशील
चितेः	: द्रष्टा, ज्ञाता को
तत्	: चित्त का
आकार	: स्वरूप, संबंध
आपत्तौ	: प्राप्त होने से, आने से,
स्व	: अपने
बुद्धि	: चित्त का
संवेदनम्	: ज्ञान होता है, पता चलता है।

चित्त और बुद्धि में सूत्रकार ने कोई अंतर नहीं माना है। स्वबुद्धि का अर्थ द्रष्टा, चित्त का स्वामी अभिप्रेत है। द्रष्टा का चित्त के साथ सम्बन्ध आने पर ही द्रष्टा को चित्त का ज्ञान होता है। सम्बन्ध न आने पर दोनों पदार्थ अपने-अपने स्थान पर रहते हैं। चित्त प्रकृति से बना है, इसलिए चित्त अपनी प्रकृति में रहता है और द्रष्टा अपने साक्षी रूप में रहता है। इसीसे यह सहज सिद्ध होता है कि दोनों पदार्थ बिलकुल भिन्न हैं। इस तरह इस सूत्र में द्रष्टा का स्वामित्व और भिन्नत्व बताया गया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। इसमें इस बात का भी खण्डन आ गया है कि चित्त को ही चित्त का ज्ञान होता है।

(द्रष्टा जीवात्मा चित्त का स्वामी है, इसलिए चित्त केवल साधन है—यह बात अगले सूत्र में कही गयी है।)

× × ×

१७. द्रष्टृ-दृश्योपरक्तम् चित्तम् सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

द्रष्टृ	: द्रष्टा, ज्ञाता (और)
दृश्य	: दृश्य सृष्टि, दोनों के साथ
उपरक्तम्	: (चित्त का) स्पर्श होने से, संबंध आने से
चित्तम्	: चित्त
सर्वार्थम्	: सर्व-पदार्थग्राही बन जाता है यानी चित्त को सब पदार्थों का ग्रहण, ज्ञान हो जाता है।

चित्त जड़ है, इसलिए उसके पीछे चेतन ज्ञाता हो और उसके साथ चित्त का स्पर्श होता है, तभी चित्त इन्द्रियों द्वारा सृष्टि के सब पदार्थों का ग्रहण कर सकता है, अन्यथा नहीं। चित्त के पीछे ज्ञाता है और आगे दृश्य सृष्टि है। चित्त और सृष्टि के बीच में इन्द्रियाँ हैं। द्रष्टा का चित्त के साथ सम्बन्ध आने पर और चित्त का इन्द्रियों द्वारा सृष्टि के साथ सम्बन्ध आने पर ही हमें सृष्टि का ज्ञान होता है। चित्त केवल पदार्थ-ग्रहण करने का साधन है।

(अगले सूत्र में बता रहे हैं कि चित्त की यह प्रवृत्ति किसके लिए है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१८. तद् असंख्येय-वासनाभिः चित्रम् अपि परार्थम् संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

असंख्येय	: असंख्य, अनेक
वासनाभिः	: वासनाओं से युक्त
तत्	: वह
चित्रम्	: चित्त
अपि	: भी
संहत्य-कारित्वात्	: इंद्रियों के साथ सहकार करने के कारण
परार्थम्	: परार्थ के लिए यानी द्रष्टा के भोग और मोक्ष के लिए ही है।

चित्त के लिए यहाँ 'चित्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है। चित्त में पदार्थों के रूप और आकारात्मक चित्र अंकित हुआ करते हैं। इसलिए 'चित्र' शब्द की उपमा उपयुक्त है।

प्रश्न यह है कि चित्त का विषय-ग्रहण किसके लिए है? उत्तर में सूत्रकार का कथन है कि चित्त एक शक्ति है; पाँच ज्ञानेन्द्रियां भी एक शक्ति है। इन दोनों में परस्पर सहकार चलता है। चित्त इन्द्रियों के सहकार से पदार्थों का जो ग्रहण करता है, यह चित्त की प्रवृत्ति किसी दूसरे के लिए ही हो सकती है, क्योंकि चित्त स्वयं जड़ है और इंद्रियां भी जड़ हैं। इसलिए इसी निर्णय पर पहुंचना पड़ता है कि यह सारी सहकारात्मक प्रवृत्ति चित्त के पीछे स्थित चेतन, ज्ञाता के लिए ही है। जड़ की प्रवृत्ति चेतन के लिए ही हो सकती है। जड़ की प्रवृत्ति जड़ के लिए है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि जड़ ज्ञानवान् पदार्थ नहीं है। प्रवृत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसके लिए चलती हो, उसको कम-से-कम उस प्रवृत्ति का ज्ञान तो होना चाहिए ।

इस प्रकरण में तीन प्रमुख बातें सिद्ध की गयी हैं :

(१) ज्ञाता और चित्त, दोनों भिन्न पदार्थ हैं, (२) ज्ञाता चेतन है और चित्त जड़ है, और (३) इस ज्ञाता चेतन के लिए ही चित्त का अस्तित्व और सब प्रवृत्तियां हैं ।

ज्ञाता और चित्त दोनों भिन्न होने के कारण विवेक-ख्याति का आश्रय लेना होगा । इसलिए विवेक-ख्याति का चौथा प्रकरण अगले सूत्र से प्रारंभ होता है । (तीसरा प्रकरण पढ़ते समय रायचन्द्रभाई का 'आत्म-सिद्धिप्रकरण' पढ़ना चाहिए ।)

विवेक-ख्याति और उसका फल : ४ :

१९. विशेषदर्शिनः आत्मभावभावना-विनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

विशेष-दर्शिनः	: विशेषदर्शी, यानी आत्मानात्म-विवेकदर्शी, आत्मदर्शी को
आत्मभाव	: 'मैं देह हूं' ऐसे आत्मभाव को यानी आत्मबुद्धि की
भावना	: निष्ठा
विनिवृत्तिः	: निवृत्त होती है, नष्ट होती है ।

देह से भिन्न अपना स्वरूप देखना विशेष दर्शन है । इसीका नाम 'आत्मख्याति' या 'विवेक-ख्याति' है । जिसने यह विशेष दर्शन प्राप्त किया, उस आत्मदर्शी, विशेषदर्शी पुरुष की देहात्मबुद्धिरूप निष्ठा समाप्त हो जाती है । इस प्रकार विवेकरूपी विद्या द्वारा देह से अहंप्रत्ययरूपी अविद्या का नाश होने के बाद इस विद्या का नाश किसी प्रकार नहीं हो सकता । अविद्या को तो विद्या हटा देती है, लेकिन विद्या अमिट, अखण्ड रहती है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(विवेक-ख्याति के परिणामस्वरूप चित्त का प्रवाह किस तरफ बहने लगता है, यह अगले सूत्र में बताया गया है ।)

× × ×

२०. तदा विवेकनिम्नम् कैवल्य-प्राग्भारम् चित्तम् ॥२६॥

तदा	: तब यानी विवेक-ख्याति के बाद
चित्तम्	: चित्त
विवेक	। विवेक की ओर
निम्नम्	: गमन करनेवाला यानी विवेक-प्रवृत्त और
कैवल्य	: मोक्ष के
प्राग्भारम्	। अभिमुख होता है ।

विवेक-ख्याति से चित्त का प्रवाह ऊर्ध्वगामी होता है । यह चित्त प्रायः कभी काम-क्रोध आदि के वश नहीं होगा, हमेशा विवेकवश यानी विवेक-निष्ठ ही रहेगा । सामान्य लोगों के चित्त का प्रवाह अधोगामी रहता है । प्रसंग उपस्थित हो जाने पर चित्त फौरन् काम-क्रोध आदि के वश हो जाता है । यह चित्त अविवेकनिष्ठ है । विवेक-ख्याति से चित्त का मुख 'कैवल्य' यानी मोक्ष की तरफ ही रहेगा । लगन उसीकी रहेगी । सामान्य चित्त का मुख विषयों की तरफ होता है और उसे उन्हींमें रस आता है । इस प्रकार इस सूत्र में विवेक-ख्याति के दो परिणाम बताये गये हैं— विवेकवशता और कैवल्याभिमुखता ।

(चित्त विवेकनिष्ठ हो जाने पर भी कभी-कभी पूर्व-संस्कार जागृत होते हैं । यह अगले सूत्र में बताया गया है ।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

तत्	: उसमें यानी विवेकनिष्ठ और कैवल्याभिमुख चित्त में
छिद्रेषु	: बीच-बीच में कभी-कभी
संस्कारेभ्यः	: (इस जन्म की तथा पूर्व-जन्म की वासनाओं के) संस्कारों के कारण
प्रत्यय-अन्तराणि	: अविद्या-जन्य भेद-बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रत्यय उठेंगे ।

आत्मानात्म-विवेकाभ्यास से चित्त-शुद्धि हो जाने के बाद जिसने आत्मख्याति प्राप्त कर ली, उस आत्मदर्शी के चित्त में भी बीच-बीच में, कभी-कभी प्रसंगानुसार भ्रांतिजन्य संस्कार उठते हैं । आत्मदर्शी को समाज में ही रहना पड़ता है । लोक-संग्रह की जिम्मेदारी भी उस पर रहती है । राजस और तामस लोगों के सम्पर्क में आने पर क्रोध आदि विकारों का आविर्भाव अपरिहार्य है । इसके अलावा स्त्री-पुरुषों के एक साथ रहने का प्रसंग आने पर कभी-कभी सूक्ष्म विकारों का जागृत होना भी संभव है । लेकिन इन संस्कारों के जागृत होने का कारण उस विशेष-दर्शी के पुराने वासना-संस्कार हैं । इस प्रकार ये वासना-संस्कार बन्धनकारक होते हैं । इसलिए उनका क्षय ही करना चाहिए । तुलसीदासजी ने उत्तर-काण्ड में इस सन्दर्भ में लिखा है :

'सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ । उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ ॥
अति संघरषन जौं कर कोई । अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥'

बहुत अवज्ञा करते रहने से ज्ञानी पुरुष के हृदय में भी क्रोध पैदा होता है । चन्दन अति शीतल होने पर भी, यदि उसको बहुत रगड़ा जाय, तो अग्नि प्रकट हो जायगी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(इन मोक्ष-विरोधी संस्कारों का किस तरह क्षय किया जाय, यह अगले सूत्र में बताया है।)

× × ×

२२. हानम् एषाम् क्लेशवत् उक्तम् ॥ २८ ॥

क्लेशवत्	: जिस तरह क्लेशों का त्याग किया जाता है, उस तरह
एषाम्	: इन संस्कारों का
हानम्	: त्याग करना चाहिए।
उक्तम्	: (क्लेशों का त्याग किस तरह किया जाय, यह दूसरे पाद में) बताया है।

द्वितीय पाद में जो क्लेश गिनाये गये हैं, उनसे ये संस्कार भिन्न नहीं हैं। उन्हींसे ये संस्कार पैदा होते हैं। क्लेशों का त्याग किस तरह किया जाय यह द्वितीय पाद के १० और ११ वें सूत्र में बताया गया है।

संस्कार अर्थात् विकार दो प्रकार के होते हैं : स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म विकारों का उनके उद्गम-स्थान पर हमला करके त्याग करना है और स्थूल विकारों को ध्यान और आत्मानात्म-विवेक से हटाना है। आत्मदर्शी के चित्त में स्थूल विकार प्रायः कभी उठेंगे नहीं। कभी-कभी सूक्ष्म विकारों के जागृत होने की संभावना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२३. प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥

प्रसंख्याने	: विवेक-ख्याति-जैसे विशेष ज्ञान के बारे में
अपि	: भी
अकुसीदस्य	: जिसका भान. अभिमान चला गया हो, उसको
सर्वथा	: सब प्रकार से यानी अखण्ड
विवेकख्यातेः	: विवेक-ख्याति का अनुभव आनेसे
धर्ममेघः	: आचरण में धर्म की यानी सत्य की वर्षा करनेवाली
समाधिः	: समाधि प्राप्त होती है।

सतत और अखण्ड विवेक-ख्याति का भीतर से अनुभव होना ही मोक्ष देनेवाली स्थिति है। पिछले प्रकरण में आत्मख्याति का अनुभव बताया, लेकिन आत्मख्याति का भी भान (अभिमान) रहने लगे तो मानना चाहिए कि अस्मिता का क्षय नहीं हो पाया। अस्मिता अपना जोर दिखा रही है। इसलिए आत्मख्याति के भी भान को नष्ट करने के लिए वैराग्य का अभ्यास करना चाहिए। इस तरह वैराग्य के अभ्यास से आत्मख्याति का भान सम्पूर्ण नष्ट होने पर ही आत्मख्याति अखण्ड रहती है। उसका प्रवाह अस्मिता से खण्डित नहीं होता। यह स्थिति प्राप्त होने के बाद ही आचरण में सत्य की वर्षा हो सकती है, आचरण परिपूर्ण धर्ममय, सत्यमय बन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकता है। इसका नाम 'धर्ममेघ समाधि' है। यही वैराग्य की बात तीसरे पाद के १७वें सूत्र में बतायी है।

(अगले सूत्र में बताया जा रहा है कि 'धर्ममेघ समाधि' का एक फल क्लेश-कर्म-निवृत्ति है।)

× × ×

२४. ततः क्लेशकर्म-निवृत्तिः ॥ ३० ॥

ततः	: विवेक-ख्याति और धर्ममेघ समाधि प्राप्त होने के बाद
क्लेश	: पाँच क्लेशों और
कर्म	: कर्मों की
निवृत्तिः	: निवृत्ति हो जाती है।

भीतर आत्मख्याति और बाहर आचरण में परिपूर्ण सत्यमयता या धर्ममयता प्राप्त होने से क्लेशों का और कर्मों का दाह अपरिहार्य है। ब्रह्मसूत्र (अ० ४, पाद १, सूत्र १३) के शांकरभाष्य में लिखा है: 'अकर्तात्मत्वबोधात् कर्मदाहप्रसिद्धिः'—मैं अकर्ता आत्मा हूँ, ऐसा बोध हो जाने से कर्मों का जल जाना प्रसिद्ध है। आगे (सूत्र १५ में) फिर लिखा है: 'अकर्तात्मत्वबोधोऽपि हि मिथ्याज्ञानबाधनेन कर्माण्युच्छिनत्ति'—मैं अकर्ता आत्मा हूँ, यह बोध मिथ्याज्ञान को बाधित कर यानी मिथ्याज्ञान को हटाकर कर्मों को उखाड़ देता है। ज्ञान का प्रतिबन्ध दूर होने से ज्ञान व्यापक हो जाता है।

(अगले सूत्र में धर्ममेघ समाधि का दूसरा फल बताया गया है।)

× × ×

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२५. तदा सर्वावरण-मलापेतस्य ज्ञानस्य आनन्त्यात् ज्ञेयम् अल्पम् ॥ ३१ ॥

तदा	: क्लेश-कर्म-निवृत्ति के बाद
सर्व	: सब प्रकार के
आवरण-मल-अपेतस्य	: मल या अशुद्धि के आवरण से अलग हुए पुरुष के लिए,
ज्ञान	: ज्ञान के
आनन्त्यात्	: अनन्त, व्यापक होने से, ज्ञान-प्रकाश एकदम व्यापक हो जाने से
ज्ञेयम्	: जानने-योग्य वस्तु
अल्पम्	: अल्प या शून्य हो जाती है, जानने योग्य कुछ नहीं रहता।

ज्ञान-प्रकाश के व्यापक होने में बाधक बननेवाली चीज अविद्या (आवरण) और राग-द्वेष आदि (मल) है। वह निवृत्त हो जाता है, तो ज्ञान-प्रकाश व्यापक हो जाता है। तुकाराम महाराज ने लिखा है, 'सर्वा भूतीं देख एक आत्मा'।—सब भूतों में (सर्वत्र) एक ही आत्मा देखें, अनुभव करें।

अविद्या और उसके परिवार के हट जाने से ऐसी प्रतीति होने लगती है कि जो आत्मा हमारे अन्दर है, वही सब मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियों में है। यही ज्ञान का व्यापक होना है।

'ज्ञेय' यानी जानने-योग्य पदार्थ। आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जड़ सृष्टि के ज्ञान की जिज्ञासा नहीं रहती, क्योंकि जड़सृष्टि नित्य वस्तु नहीं है। वह परिवर्तनशील, विनाशी है, अतएव मिथ्या है। इसलिए सूत्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कह रहे हैं कि आत्मा का ज्ञान व्यापक होता है, तो जानने-योग्य वस्तु अल्प या शून्य रह जाती है। मगर इसका आशय यह नहीं कि सिद्ध पुरुष जनता की सेवा के लिए आवश्यक बाह्य जगत् के उपयुक्त ज्ञान को तुच्छ मानकर उसे प्राप्त करने से इनकार करेगा। बल्कि सेवा के लिए उपयोगी ज्ञान वह जरूर प्राप्त कर लेगा और दूसरों की अपेक्षा अधिक प्राप्त करेगा। लेकिन उस ज्ञान की कीमत आत्मज्ञान के मुकाबले में शून्य समझेगा। (इस प्रसंग में गीता के सातवें अध्याय का दूसरा श्लोक द्रष्टव्य है।)

गुणों का विलय और कैवल्य : ६ :

२६. ततः कृतार्थानाम् परिणाम-क्रम-समाप्तिः गुणानाम् ॥ ३२ ॥

ततः	: ज्ञान व्यापक हो जाने पर
कृतार्थानाम्	: कृतार्थ या सिद्ध पुरुष के लिए
गुणानाम्	: प्रकृति के तीन गुणों का
परिणाम-क्रम	: विकास-क्रम
समाप्तिः	: समाप्त हो जाता है यानी परिपूर्ण हो जाता है।

सांख्यों का मानना है कि प्रकृति और पुरुष दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। प्रकृति अपने तीन गुणों से देह, इन्द्रियों, मन और सृष्टि के असंख्य पदार्थों को पैदा करके द्रष्टा पुरुष को मोहित करने की कोशिश करती है। पुरुष अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाने पर जहाँ प्रकृति पर मोहित होकर उसके जाल में फँसा, वहाँ प्रकृति की पुरुष के भोग और मोक्ष के लिए प्रवृत्ति शुरू हो जाती है। यहाँ से गुणों का यानी गुणयुक्त चित्त का विकास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आरंभ हो जाता है। पुरुष का संबंध इस गुणयुक्त चित्त के साथ ही रहता है। कई जन्मों तक चित्त का विकास तमोगुण, रजोगुण तक ही सीमित रहता है। फिर इन दो गुणों के संबंध में वैराग्य उपजने से और सत्संग से पुरुष सत्त्वगुण का आश्रय लेता है। धीरे-धीरे चित्त-शुद्धि होती जाती है। फिर चित्त-शुद्धि उस सीमा तक बढ़ जाती है कि पुरुष अपने स्वरूप को पहचानकर उसीमें रहने लगता है। इसके फलस्वरूप पुरुष का प्रकृति के साथ संबंध और मोह छूट जाता है। प्रकृति और चित्त के साथ पुरुष का संबंध छूट जाने से चित्त का विकास पूर्ण हो जाता है अर्थात् समाप्त हो जाता है। यही बात इस सूत्र में कही गयी है।

(क्रम शब्द की व्याख्या अगले सूत्र में है।)

× × ×

२७. क्षण-प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

क्षण-प्रति-योगी	: क्षण-संबंधी यानी हर क्षण होनेवाला
परिणाम	: ऊर्ध्वगामी परिवर्तन, विकास के
अपरान्त	: अंत तक यानी परिपूर्ण अवस्था तक पहुँचानेवाला है, और
निर्ग्राह्यः	: बाद में जिसका ग्रहण यानी दर्शन होता है, वही
क्रमः	: 'क्रम' कहलाता है।

मनुष्य का चित्त परिवर्तनशील है। हर क्षण उसमें परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन ऊर्ध्वगामी यानी ऊपर ले जानेवाला होना चाहिए। तभी समझना होगा कि साधना का ऊर्ध्वगामी क्रम यानी परि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्णावस्था तक पहुँचानेवाला विकास-क्रम शुरू हुआ। 'क्रम' योगशास्त्र का शास्त्रीय शब्द है। उसकी व्याख्या यह है कि चित्त की साधना या विकास हर क्षण इस तरह होता चले कि वह कभी पीछे न हटे और दिन-प्रति-दिन प्रगति करते हुए अंत में परिपूर्ण अवस्था प्राप्त करे।

साधना की परिपूर्ण अवस्था में मालूम होगा कि चित्त सत्वगुण की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है, उसका विकास परिपूर्ण हो गया है और अब प्रकृति और पुरुष दोनों अलग होने योग्य हो गये हैं।

(यह बात अगले सूत्र में कही गयी है।)

× × ×

२८. पुरुषार्थशून्यानाम् गुणानाम् प्रतिप्रसवः कैवल्यम् स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः इति ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थ	: पुरुषार्थ, प्रयोजन (जिनका)
शून्यानाम्	: शून्य हो (यानी जिनका पुरुषार्थ समाप्त हो चुका हो), ऐसे
गुणानाम्	: तीन गुणों का (यानी गुणयुक्त चित्त का)
प्रति-प्रसवः	: अपने कारणरूप प्रकृति में विलय हो जाना
कैवल्यम्	: मोक्ष है।
वा	: अथवा
चिति-शक्तिः	: ज्ञानशक्तिरूप पुरुष, द्रष्टा जीवात्मा (का)
स्वरूप	: अपने स्वरूप में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठा : प्रतिष्ठित होना (कैवल्य है।)
इति : इस प्रकार (शास्त्र की समाप्ति हुई है।)

सांख्य मोक्ष को द्विविध मानते हैं। चित्त का पूर्ण विकास, उत्कर्ष या शुद्धि हो जाने से गुणों को यानी गुणयुक्त चित्त को कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, इसलिए उसके अस्तित्व का कोई प्रयोजन नहीं रहता। इसका अर्थ यह कि चित्त पुरुषार्थ-शून्य होता है। यानी उसका पुरुषार्थ, विकास परिपूर्ण हो जाने से वह समाप्त हो जाता है। इसलिए चित्त अपना लय प्रकृति में कर देता है। चित्त का प्रकृति में लय हो जाने से पुरुष के सामने प्रकृति का जोर समाप्त हो जाता है और इसलिए प्रकृति पुरुष से वियुक्त होकर अकेली रह जाती है। यही प्रकृति का 'कैवल्य' यानी 'मोक्ष' है। कैवल्य का अर्थ है अकेले रहना। यह मोक्ष की व्याख्या है।

चित्त परिपूर्ण शुद्ध और वैराग्ययुक्त हो जाने पर द्रष्टा पुरुष को अपने स्वरूप की पहचान हो जाती है। तब प्रकृति से उसका संबंध टूट जाता है। इसलिए वह भी अकेला रहता है, यानी प्रकृति पर मोहित होकर उसके फंदे में फंसने के पहले जिस स्वरूप में वह प्रतिष्ठित था, उसी अपने शुद्ध ज्ञानरूप में लीन हो जाता है। यह दूसरी व्याख्या है। सारांश—प्रकृति और पुरुष दोनों परस्पर अलग होकर मोक्ष पाते हैं।

यहाँ चतुर्थपाद समाप्त होता है, इसलिए इस पाद की साररूप समालोचना करना उपयुक्त होगा।

इस पाद में पहले योगी के कर्म और सामान्य लोगों के कर्मों का भेद स्पष्ट किया गया। फिर वासना का स्वरूप बताया। वह किसका आश्रय लेकर रहती है, इसको समझने से वासना नष्ट होती है और अविद्या को हटाने से वासना-त्याग सहज ही हो जाता है। इसके बाद यह सिद्ध कर कि सृष्टि के भिन्न-भिन्न पदार्थ किसी एक कारण में से ही पैदा होते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभाव में से उनकी उत्पत्ति असंभव है—'शून्यवाद' का खण्डन किया। फिर बाह्य वस्तु को ही न माननेवाले 'विज्ञानवाद' का खण्डन करके चित्त को ही ज्ञाता मानकर चित्त के पीछे, एक और चित्त का स्वीकार करनेवाले पक्ष का खण्डन करने के लिए यह सिद्ध किया कि चित्त और ज्ञाता दोनों संपूर्णतया स्वतंत्र पदार्थ हैं। अंत में विशेषदर्शी की आत्मख्याति और धर्म-मेघ का विवेचन करके कैवल्य के दो स्वरूपों का वर्णन किया।

०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादश भूमिकाएँ

१. योग—चित्तवृत्तियों को सम्पूर्ण रूप से वश में करना।

२. सम्प्रज्ञात—अस्मिता को हटाकर पिण्ड में स्थित आत्मतत्त्व का दर्शन, अकर्तृत्व का अनुभव, आत्मदर्शन।

३. असम्प्रज्ञात—अकर्तृत्व की सहज अवस्था, जो अस्मिता के विराम-प्रत्यय का सहज अभ्यास होने से सधती है।

४. सबीज समाधि—ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वरतत्त्व का दर्शन, हरिदर्शन।

५. निर्बीज समाधि—सब प्रकार से वृत्तिनिरोध हो जाने से भेद के अभाव की प्रतीति, अद्वैत-दर्शन।

६. ध्यान—आत्म-प्रत्यय की अखण्ड धारा का अनुभव।

७. निरोध-परिणाम—दो प्रत्ययों के बीच के निरोध क्षण में चित्त को अन्वित करने का अभ्यास।

८. समाधि-परिणाम—सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय होने से प्राप्त होनेवाला आत्म-लय।

९. एकाग्रता-परिणाम—शांत, समान, एक ही अद्वैत प्रत्यय के अनुभव से भेद के अभाव की अद्वैतावस्था।

१०. विवेक-ख्याति या चित्त से भिन्न आत्मख्याति या अपनी अखण्ड पुरुष-ख्याति—स्वरूप पहचानकर उस स्वरूपानुभव में अखण्ड स्थित रहना।

११. धर्ममेघ-समाधि—अखण्ड आत्मख्याति के अनुभव से पूर्ण सत्य-मय, धर्ममय आचरण।

१२. कैवल्य—आत्मा के समान चित्त की सम्पूर्ण शुद्धि के अनुभव से दोनों का वियुक्त होकर चित्त का अपनी प्रकृति में लय और जीवात्मा का, यानी द्रष्टा का अपने ज्ञान-स्वरूप में विलय।

०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट : २

विवेचित योग-सूत्रों की तालिका

(अकारादि क्रम से)

(यहाँ उन योग-सूत्रों की तालिका दी जा रही है, जिनका विवेचन ग्रन्थ में हुआ है ।)

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
अतीतानागतम् स्वरूपतः अस्ति अध्वभेदात् धर्माणाम् ।	४	१२	१३१
अथ योगानुशासनम् ।	१	१	१५
अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्म-ख्यातिः अविद्या ।	२	५	६५
अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।	१	११	२२
अपरिग्रह-स्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।	२	३९	९१
अभाव-प्रत्ययालम्बना वृत्तिः निद्रा ।	१	१०	२१
अभ्यास-वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः ।	१	१२	२२
अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम् प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो-दाराणाम् ।	२	४	६५
अविद्याऽस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।	२	३	६४
अस्तेय-प्रतिष्ठायाम् सर्वरत्नोपस्थानम् ।	२	३७	९०
अहिंसा-प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर-त्यागः ।	२	३५	८९
अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ।	२	३०	८४
ईश्वरप्रणिधानाद् वा ।	१	२३	३५
ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।	१	४८	५६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
एकसमये च उभयानवधारणम् ।	४	२०	१३९
एतया एव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।	१	४४	५३
कर्माशुक्लाकृष्णम् योगिनः त्रिविधत् इतरेषाम् ।	४	७	१२७
कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धि-क्षयात् तपसः ।	२	४३	९४
कृतार्थं प्रति नेष्टमपि अनष्टम् तदन्यसाधारणत्वात् ।	२	२२	७८
क्लेश-कर्म-विपाकाशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः ।	१	२४	३७
क्लेशमूलः कर्याशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।	२	१२	७१
क्षण-प्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।	४	३३	१५२
क्षीणवृत्तेः अभिजातस्येव मणेः ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ।	१	४१	५०
चितेः अप्रतिसंक्रमायाः तदाकारापत्तौ स्व-बुद्धि-संवेदनम् ।	४	२२	१४१
चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेः अतिप्रसङ्गः स्मृति-सङ्करश्च ।	४	२१	१४०
जाति-देश-काल-व्यवहितानाम् अपि आनन्तर्यम् स्मृतिसंस्कारयोः एकरूपत्वात् ।	४	९	१२८
जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ।	२	३१	८५
तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।	४	२७	१४६
तज्जः संस्कारः अन्यसंस्कार-प्रतिबन्धी ।	१	५०	५८
तज्जपः तदर्थभावनम् ।	१	२८	३९
तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।	३	५	१११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
ततः कृतार्थानाम् परिणाम-क्रम-समाप्तिः गुणानाम् ।	४	३२	१५१
ततः क्लेशकर्म-निवृत्तिः ।	४	३०	१४९
ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।	२	५२	१०१
ततः तद्विपाकानुगुणानाम् एव अभिव्यक्तिः वासनानाम् ।	४	८	१२८
ततः परमा वश्यता इन्द्रियाणाम् ।	२	५५	१०३
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायाभावः च ।	१	२९	३९
ततो द्वन्द्वानभिघातः ।	२	४८	९८
तत् परं पुरुषख्यातेः गुणवैतृष्ण्यम् ।	१	१६	२८
तत्प्रतिषेधार्थम् एकतत्त्वाभ्यासः ।	१	३२	४२
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।	१	२५	३७
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।	३	२	१०८
तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।	१	४२	५१
तत्र स्थितौ यत्नः अभ्यासः ।	१	१३	२५
तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।	२	२५	८१
तदर्थ एव दृश्यस्य आत्मा ।	२	२१	७८
तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम् ।	१	३	१६
तदा विवेकनिम्नम् कैवल्य-प्राग्भारम् चित्तम् ।	४	२६	१४५
तदा सर्वावरण-मलापेतस्य ज्ञानस्य आनन्त्यात् ज्ञेयम् अल्पम् ।	४	३१	१५०
तदेव अर्थमात्र-निर्भासम् स्वरूपशून्यम् इव समाधिः	३	३	१०९
तद् अपि बहिरङ्गम् निर्बीजस्य ।	३	८	११३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
तद् असंख्येय-वासनाभिः चित्रम् अपि परार्थम् संहत्यकारित्वात् ।	४	२४	१४३
तद् उपरागापेक्षित्वात् चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।	४	१७	१३६
तद्वैराग्यात् अपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।	३	५०	१२२
तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।	२	१	६३
तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गति-विच्छेदः प्राणायामः ।	२	४९	९९
तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।	३	१०	११६
तस्य भूमिषु विनियोगः ।	३	६	११२
तस्य वाचकः प्रणवः ।	१	२७	३८
तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।	२	२७	८२
तस्य हेतुः अविद्या ।	२	२४	८०
तस्यापि निरोधे सर्व-निरोधात् निर्बीजः समाधिः ।	१	५१	५८
ता एव सबीजः समाधिः ।	१	४६	५५
तासाम् अनादित्वम् च आशिषः नित्यत्वात् ।	४	१०	१२९
तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः ।	१	२१	३४
ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।	२	१०	६९
ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मानः ।	४	१३	१३२
ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः ।	३	३७	११९
ते ह्लाद-परिताप-फलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।	२	१४	७२
त्रयम् अन्तरङ्गम् पूर्वेभ्यः ।	३	७	११२
त्रयम् एकत्र संयमः ।	३	४	१११
दुःख-दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासाः विक्षेप-सहभुवः ।	१	३१	४२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
दुःखानुशयी द्वेषः।	२	८	६८
दृग्दर्शनशक्त्योः एकात्मतेव अस्मिता।	२	६	६७
दृष्टानुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम्।	१	१५	२७
देशबन्धः चित्तस्य धारणा।	३	१	१०७
द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।	२	२०	७७
द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।	२	१७	७४
द्रष्टृ-दृश्योपरक्तम् चित्तम् सर्वार्थम्।	४	२३	१४२
धारणासु च योग्यता मनसः।	२	५३	१०२
ध्यानहेयाः तद्वृत्तयः।	२	११	७०
न च एक-चित्त-तन्त्रम् वस्तु तद् अप्रमाणकम् तदा किम् स्यात्।	४	१६	१३५
न तत् स्वाभासम् दृश्यत्वात्।	४	१९	१३८
निर्विचार-वैशारद्ये अध्यात्म-प्रसादः।	१	४७	५६
परमाणु-परम-महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।	१	४०	४९
परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैः गुण-वृत्ति-विरोधात् च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।	२	१५	७३
परिणामैकत्वात् वस्तुतत्त्वम्।	४	१४	१३३
पुरुषार्थशून्यानाम् गुणानाम् प्रतिप्रसवः कैवल्यम् स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः इति।	४	३४	१५३
प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलम् भूतेन्द्रियात्मकम् भोगापवर्गार्थम् दृश्यम्।	२	१८	७५
प्रच्छर्दन-विधारणाभ्याम् वा प्राणस्य।	१	३४	४४
प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।	१	७	१९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

12 ६ 1

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ।	१	६	१८
प्रयत्न-शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।	२	४७	९७
प्रसंख्याने अपि अकुसीदस्य सर्वथा विवेक-ख्यातेः धर्ममेघः समाधिः ।	४	२९	१४८
बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी चतुर्थः ।	२	५१	१०१
बाह्याभ्यन्तर-स्तम्भ-वृत्तिः देश-काल-संख्याभिः परिदृष्टः दीर्घ-सूक्ष्मः ।	२	५०	१०१
ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायाम् वीर्यलाभः ।	२	३८	९१
भवप्रत्ययः विदेह-प्रकृति-लयानाम् ।	१	१९	३३
मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ।	१	२२	३५
मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणाम् सुख-दुःख-पुण्यापुण्य-विषयाणाम् भावनातः चित्तप्रसादनम् ।	१	३३	४३
यथाभिमतध्यानाद् वा ।	१	३९	४८
यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः अष्टौ अङ्गानि ।	२	२९	८३
योगः चित्तवृत्तिनिरोधः ।	१	२	१५
योगाङ्गानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः ।	२	२८	८२
वस्तु-साम्ये चित्तभेदात् तयोः विभक्तः पन्थाः ।	४	१५	१३४
वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।	२	३३	८६
वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः ।	१	१७	२९
वितर्काः हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिताः लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वकाः मृदु-मध्याधिमात्राः दुःखाज्ञानानन्तफलाः इति प्रतिपक्ष-भावनम् ।	२	३४	८७
विपर्ययः मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम् ।	१	८	२०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
विराम-प्रत्ययाभ्यास-पूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।	१	१८	३५
विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः।	२	२६	८१
विशेषदर्शिनः आत्मभावभावना-विनिवृत्तिः।	४	२५	१४४
विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि।	२	१९	७६
विशोका वा ज्योतिष्मती।	१	३६	४६
विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी।	१	३५	४५
वीतरागविषयम् वा चित्तम्।	१	३७	४७
वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः च।	१	५	१८
वृत्तिसारूप्यम् इतरत्र।	१	४	१७
व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमादालस्याविरति-भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित-त्वानि चित्तविक्षेपाः, ते अन्तरायाः।	१	३०	४०
व्युत्थान-निरोध-संस्कारयोः अभिभव-प्रादुर्भावौ निरोध-क्षण-चित्तान्वयः निरोधपरिणामः।	३	९	११३
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यः विकल्पः।	१	९	२०
शान्तोदितौ तुल्य-प्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रता-परिणामः।	३	१२	११७
शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।	२	३२	८६
शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैः असंसर्गः।	२	४०	९२
श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा-पूर्वकः इतरेषाम्।	१	२०	३३
श्रुतानुमान-प्रज्ञाभ्याम् अन्यविषया विशेषार्थत्वात्।	१	४९	५७
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।	२	१३	७२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।	१	१४	२६
सत्त्व-पुरुषयोः अत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम्।	३	३५	१२०
सत्त्व-पुरुषयोः शुद्धि-साम्ये कैवल्यम् इति।	३	५५	१२३
सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वम् सर्वज्ञातृत्वम् च।	३	४९	१२१
सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।	२	४१	९३
सत्य-प्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम्।	२	३६	८९
सदा ज्ञाताः चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात्।	४	१८	१३७
सन्तोषात् अनुत्तमः सुखलाभः।	२	४२	९३
स पूर्वेषामपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्।	१	२६	३८
समाधि-भावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।	२	२	६४
समाधि सिद्धिः ईश्वरप्रणिधानात्।	२	४५	९५
सर्वार्थतैकाग्रतयोः श्रयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः।	३	११	११७
सुखानुशयी रागः।	२	७	६८
सूक्ष्म-विषयत्वं च अलिङ्गपर्यवसानम्।	१	४५	५४
स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणम् पुनः अनिष्टप्रसङ्गात्।	३	५१	११८
स्थिरसुखम् आसनम्।	२	४६	९६
स्मृति-परिशुद्धौ स्वरूपशून्या इव अर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का।	१	४३	५२
स्वप्न-निद्रा-ज्ञानालम्बनम् वा।	१	३८	४८
स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः।	२	९	६९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	पाद	सूत्र	पृष्ठ
स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः ।	२	५४	१०२
स्व-स्वामि-शक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।	२	२३	७९
स्वाध्यायात् इष्ट-देवता-सम्प्रयोगः ।	२	४४	९४
हानम् एषाम् क्लेशवत् उक्तम् ।	४	२८	१४७
हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वात् एषाम् अभावे तदभावः ।	४	११	१३०
हेयम् दुःखम् अनागतम् ।	२	१६	७४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

SATYA NARAYAN AGARWAL
KASHI MUMUX BHAWAN
ASSI VARANASI-5

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विनोबाजी का
धर्म-समन्वय-साहित्य

ईशावास्य-वृत्ति	१-००
अष्टादशी हिंदी	१०-००
गीता प्रवचन	४-००
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	३-००
गीताई चिन्तनिका	५-००
भागवत-धर्म-सार	७-००
समणसुत्तं	१२-००
धम्मपद	१०-००
ख्रिस्त-धर्म-सार	४-००
कुरान-सार	४-००
विनयांजलि	४-००
मनु-शासनम्	३-००
जपुजी	२-५०
नाम-माला	१-००
गुरुबोध-सार	३-००

बालकोबाजी का
अध्यात्म-साहित्य

गीता-तत्व-बोध दो खण्ड पूरा सेट	७०-००
ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य	२५-००
अभंगव्रत-विवेचन	६-००
पथदीप	१-५०
गुणनिधि बापू	०-७५
अज्ञान निवृत्ति साधना के १७ पहलू	०-५०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri